सआदत हसन मंटो

वारिस अल्वी

H
819.32
M 319 A

के

H
819.32
M 319 A

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोधन के दरबार का वह दृश्य है, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे है। उनके नीचे बैठा है मुंशी जो व्याख्या का दस्तावेज़ लिख रहा है। भारत में लेखन-कला का यह संभवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख है।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ई०

सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

सआदत हसन मंटो

लेखक
वारिस अल्वी

अनुवादक
जानकी प्रसाद शर्मा

साहित्य अकादेमी

Saa'dat Hasan Manto : Hindi translation by Janaki Prasad Sharma of monograph in Urdu by Varis Alavi. Sahitya Akademi, New Delhi (1996) Rs. 15.

© साहित्य अकादेमी

प्रथम संस्करण : 1996

साहित्य अकादेमी

मुख्य कार्यालय
रवीन्द्र भवन, 35 फ़ीरोज़शाह रोड, नयी दिल्ली 110 001

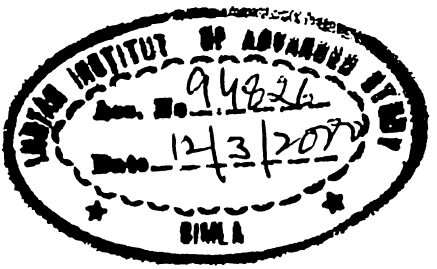

H
819.32
M319A

बिक्री केन्द्र
स्वाति, मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

प्रादेशिक कार्यालय
जीवन तारा बिल्डिंग, चौथी मंज़िल, 23 ए/44 एक्स, डायमंड हार्बर मार्ग, कलकत्ता 700 053
172, मुम्बई मराठी ग्रंथ संग्रहालय मार्ग, दादर, मुम्बई 400 014
गुना बिल्डिंग, दूसरी मंज़िल, 304-305, अन्ना सलाई, तेनामपेट, मद्रास 600 018
एडीए रंगमन्दिर, 109, जे. सी. मार्ग, बैंगलोर 560 002

ISBN 81-260-0134-8

मूल्य : पन्द्रह रुपये

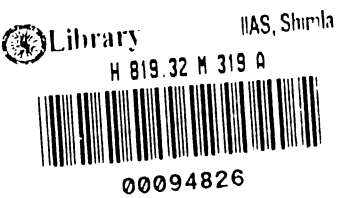

शब्द-संयोजन एवं मुद्रण : डायमंड आर्ट प्रिन्टर्स, दिल्ली - 110 053

विषय-सूची

1. जीवन और व्यक्तित्व 7

2. नाटक, निबंध और रेखाचित्र 25

3. कहानियाँ 39

1

जीवन और व्यक्तित्व

सआदत हसन मंटो का नाम ही उनके व्यक्तित्व में हमारी रुचि उत्पन्न कर देता है। शुरू में सब ही को अचरज होता है कि यह मंटो क्या है ? बलवंत गार्गी लिखते हैं : "बहुत अजीब नाम था। मंटो जैसे लार्ड मिंटो, पिंटो या विम्टो, बहुत नक़ली और हास्यास्पद !" मंटो के नाम में सआदत हसन का संपूर्ण साहित्यिक और ग़ैर साहित्यिक व्यक्तित्व सिमट आया था। मंटो को भी इसका एहसास था। इसलिए लिखते हैं : "और यह भी हो सकता है कि सआदत हसन मर जाये और मंटो न मरे !"

उर्दू में 'मंटो' विभिन्न उच्चारणों के साथ बोला जाता है। कभी उसे 'मिंटो', कभी 'मंटो' और कभी 'मंटू' बोला जाता है। 'मंटो' की वास्तविकता के बारे में स्वयं मंटो का कहना है :

"कश्मीर की वादियों में बहुत-सी जातें होती हैं जिनको 'आल' (संतान या कुटुम्ब) कहते हैं—जैसे नेहरु, सप्रू, किचलू आदि। कश्मीरी भाषा में मंट तौलने वाले बट्टे को कहते हैं। हमारे पूर्वज इतने अमीर थे कि अपना सोना-चाँदी बट्टों से तौल-तौल कर रखते थे।"

'मंटो के व्यक्तित्व और कृतित्व पर पहली शोधपूर्ण एवं विस्तृत पुस्तक डॉ. ब्रज प्रेमी ने लिखी है,। इसमें उन्होंने मंटो के ब्राह्मण मूल से सम्बन्ध को उनके नामकरण का हेतु बताया है। उनके अनुसार 'मंट' का अर्थ डेढ़ सेर होता है। मंटो की जीवन संगिनी सफ़िया बेगम ने ब्रज प्रेमी को बताया कि "मंट कबीले के वंश प्रवर्तक क्योंकि मालगुजारी के तौर पर ढाई सेर का तकाज़ा करते थे, इसलिए मंटो कहलाये।" लेकिन सफ़िया बेगम के विचार की पुष्टि ब्रज प्रेमी किसी अन्य स्रोत से न कर सके। उनके विपरीत डॉ. प्रेमी प्रसिद्ध कश्मीरी इतिहासकार मुहम्मदुद्दीन 'फौक़' की पुस्तक 'तारीख़ अक्वाम-ए-कश्मीर' के हवाले से एक अन्य कारण की ओर संकेत करते हैं : "उनके (मंटो) एक पूर्वज एक ही समय में शर्त बांध कर डेढ़ सेर या मन वटी चावल खा गये थे। उस समय से उनका नाम मंटो पड़ गया।"

डॉ. ब्रज प्रेमी सफ़िया बेगम के हवाले से मंटो के मूल पर यथेष्ट प्रकाश

डालते हुए कहते हैं कि सआदत हसन मंटो का सम्बन्ध कश्मीरी पंडितों की सारस्वत ब्राह्मण शाखा से था। सारस्वत ब्राह्मण सरस्वती नदी के किनारे बसे हुए थे। इसलिए सारस्वत कहलाये। डॉ. ब्रज प्रेमी अपने शोधपूर्ण प्रयासों के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मंटो और मनवटी दोनों किस्तबाशी पंडितों की जातियाँ हैं। किस्तबाशी पंडित कश्मीर में प्राचीन काल के दस्तकार और कारीगरों से कर वसूल करने वाले सरकारी कर्मचारी थे। क़िस्तबाशियों में से जिन लोगों ने इस्लाम को अपना लिया, वे मंटो कहलाये और जो लोग हिंदू धर्म में बने रहे, वे मनवटी कहलाने लगे। वर्तमान में दोनों परस्पर सम्बंधित जातियाँ कश्मीर में मिलती हैं।

मंटो का पैतृक परिवार अठारहवीं शताब्दी के अंत में कश्मीर से प्रव्रजन करके पंजाब आया, और लाहौर में बस गया। इस सिलसिले में सफ़िया बेगम ने डॉ. ब्रज प्रेमी को जो विवरण उपलब्ध कराये हैं, वे इस प्रकार हैं—इस परिवार के पहले व्यक्ति ख्वाजा रहमतुल्लाह थे जो पंजाब की राजधानी लाहौर में आकर बस गये थे। पेशा सौदागरी था और अल्लाह वालों से गहरी मुहब्बत रखते थे। उनके पोते ख्वाजा जमालुदीन ने कारोबार में बड़ी उन्नति की और उसे लाहौर, अमृतसर और बम्बई में फैला दिया। दरबार साहब के कारण अमृतसर सिखों का पवित्र स्थान था। इसलिए ख्वाज़ा साहब लाहौर छोड़कर अमृतसर में स्थायी रूप से बस गये। उनका पश्मीने का व्यापार था। ख्वाजा जमालुद्दीन मंटो के दादा थे। उनके पाँच बेटे थे। सबसे छोटे बेटे का नाम मौलवी गुलाम हसन था, जो कि मंटो के पिता थे। मौलवी गुलाम हसन ने दो शादियाँ कीं। उनके बारह बच्चे हुए। जिनमें से चार लड़के थे और आठ लड़कियाँ। मंटो उनकी दूसरी पत्नी से थे। मंटो के तीन सौतेले भाई थे जो आयु में उनसे काफ़ी बड़े और सुशिक्षित थे। मंटो की एक ही सगी बहन थी जिनका नाम इकबाल बेगम था। वह भी आयु में मंटो से काफी बड़ी थीं और मंटो इक़बाल बेगम से डरते भी थे। वह बम्बई में माहम में रहती थीं। सफ़िया बेगम से मंटो की शादी उन्हीं के प्रयासों से हुई। और शादी के सिलसिले में मंटो की माँ जब बम्बई आयीं तो इक़बाल बेगम के घर में ही ठहरी थीं। इससे ज़्यादा इक़बाल बेगम का ज़िक्र मंटो के यहाँ नहीं मिलता।

मंटो के पिता मौलवी गुलाम हसन सुशिक्षित थे और सिमराला में, जो लुधियाना से बाईस मील दूर चंडीगढ़ जाने वाली सड़क पर एक गाँव है, किसी सरकारी पद पर नियुक्त थे। सिमराला में 11 मई, 1914 ई. को मंटो का जन्म हुआ। मंटो के पिता ने जल्द ही अपना तबादला अमृतसर करा लिया और कूचा वकीलान में रहने लगे। वे मुंसिफ़ या सब जज के पद से सेवा निवृत्त हुए।

मंटो के पिता भी कश्मीरियों से बहुत प्रेम करते थे। मंटो को भी अपने कश्मीरी

होने पर गर्व था और अगर उन्हें कोई कश्मीरी मिल जाता तो अपने पिता की भाँति ही उससे गर्मजोशी से मिलते और उसे बतलाते कि मैं भी कश्मीरी हूँ, वैसे अमृतसरी हूँ। कश्मीर से प्रगाढ़ प्रेम के बावजूद मंटो ज़िंदगी भर कश्मीर न जा सके। उनका सफ़र सिर्फ़ बटौत तक रहा जहाँ तपेदिक के इलाज के लिए उन्हें कुछ महीने ठहरना पड़ा था। यहीं उनका एक आवारा कश्मीरी लड़की से रागात्मक लगाव स्थापित हो गया था। यह उनका पहला और अंतिम और उन्हीं के शब्दों में अपरिपक्व प्रेम था। उसकी स्मृति उनकी कुछ आरंभिक और उतनी ही अपरिपक्व कहानियों में सुरक्षित है। रूमानी प्रेम पर मंटो के यहाँ इन कहानियों के अलावा और कोई दूसरी महत्त्वपूर्ण रचनाएं नहीं मिलतीं। जीवन में प्रेम की गली और साहित्य में रोमान की वादियों से वह बहुत जल्द बाहर निकल आये।

अमृतसर में मंटो के कमरे में उनके पिता की एक तस्वीर टँगी हुई थी। मंटो के लंगोटिए यार अबू सईद कुरेशी ने इस तस्वीर से मंटो के पिता का हुलिया इस तरह बयान किया है :

"बंद कालर का कोट, सिर पर कश्मीरी ढंग की पगड़ी, खशखशी दाढ़ी, बड़ी-बड़ी रोष भरी आँखें, यूं लगता जैसे हमारी गतिविधियों को बड़ी अरुचि की दृष्टि से देख रहे हैं। शायद उन कोपयुक्त आँखों की चपेट से बचने के लिए ही सआदत हसन एक बार भागकर बम्बई चला गया था। उन दिनों वह मैट्रिक में फेल हो रहा था। कहा करता—"मियां जी अल्लाह बख्शे बड़े सख्तगीर आदमी थे।" सआदत हसन की बहन (नासिरा इकबाल) बता रही थीं : "जान ख़ता होती थी उसकी मियांजी के डर से...पतंग उड़ा रहा था एक रोज़ मियां जी आ गये इतने में, छत से कूद पड़ा ये बराबर के कोठे पर, चोट आई लेकिन क्या मजाल जो 'सी' तक की हो।"

मंटो ने अपने पिता की कठोरता का जिक्र आग़ा हश्र पर लिखे स्केच में इस प्रकार किया है :

"तीन-चार पेशावर लफंगों के साथ मिलकर हमने एक ड्रामाटिक क्लब खोला था। आग़ा हश्र का एक ड्रामा स्टेज करने का इरादा किया था। यह क्लब सिर्फ़ पंद्रह-बीस रोज क़ायम रह सका था। इसलिए कि वालिद साहब ने एक रोज़ धावा बोलकर हार्मोनियम तबले सब तोड़-फोड़ दिये थे और साफ़-साफ़ शब्दों में हमें यह बता दिया था कि ऐसे वाहियात खेल उन्हें बिल्कुल पसंद नहीं।" इसी स्केच में एक जगह लिखते हैं: "आग़ा साहब का कोई ड्रामा देखने का मुझे इत्तफ़ाक़ नहीं हुआ था, इसलिए कि रात को घर से बाहर रहने की मुझे क़तई इजाज़त नहीं थी।"

मंटो के जीवनीकारों का कहना है कि मंटो पिता के स्नेह से हमेशा वंचित रहा। इस कमी को मंटो की माँ बीबी जान ने पूरा किया। अबू सईद कुरेशी ने पिता की कठोरता को मंटो के व्यक्तित्व के अध्ययन में एक महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक विंदु के रूप में प्रस्तुत किया है। जैसे कि मंटो के व्यक्तित्व में आतंकप्रियता, विद्रोह और आवारगी के जो तत्त्व थे, वे पिता की इसी उपेक्षा का परिणाम थे। लेकिन मंटो की किसी रचना से इस बात का प्रमाण नहीं मिलता कि उसका अपने पिता से लम्बे समय तक किसी तरह का मनमुटाव रहा था। यदि था भी तो वह उसे खामोशी से सहन कर गया था। या अपने तूफ़ानों से भरे जीवन के हंगामों में भूल गया था, या किशोर-वय की स्वच्छंदता में उसकी काट ढूँढ़ ली थी। न सिर्फ़ यह कि उसने अपने कमरे में पिता की तस्वीर लगा रखी थी बल्कि अपने पहले कहानी-संग्रह "आतिश पारे" का समर्पण भी 'वालिद मरहूम के नाम' किया था। मंटो के जीवनीकारों ने कठोर पिता और सौतेले भाइयों के जिस मनोवैज्ञानिक संलक्षण को उभारने की कोशिश की है, उसकी पुष्टि मंटों की रचनाओं से नहीं होती। पिता की कठोरता और भाइयों के सौतेले बर्ताव के जख़्म को मंटो से ज़्यादा मंटो के जीवनीकारों ने कुरेदा है। अपने सौतेले भाइयों के सम्बंध में मंटो ने अपने एक आत्मकथात्मक रेखाचित्र में इस प्रकार लिखा है :

"उसके तीन बड़े भाई जो उससे उम्र में बहुत बड़े थे और विलायत में तालीम पा रहे थे, उनसे उसको कभी मुलाकात का मौका ही नहीं मिला था। इसलिए कि वे सौतेले थे। वह चाहता था, वे उससे मिले, उससे बड़े भाइयों जैसा व्यवहार करें। लेकिन यह व्यवहार उसे उस समय मिल सका जब साहित्य जगत उसे बहुत बड़ा कहानीकार स्वीकार कर चुका था।"

इस कथन को उतना ही महत्व देना चाहिए जितना कि मंटो ने दिया है। उपेक्षा की शिकायत है, जो स्वाभाविक है लेकिन शिकायत मनोवैज्ञानिक ग्रंथि नहीं बनती। दरअस्ल मंटो और उसके भाई दो भिन्न बल्कि विपरीत दुनियाओं के वासी थे। उनमें मेल-मिलाप होता तब भी हार्दिक अभिन्नता की संभावनाएँ कम थीं। वे सुशिक्षित, सांसारिक दृष्टि से सफल और प्रतिष्ठित और अत्यंत धार्मिक और परहेज़गार लोग थे। मंटो ठीक युवावस्था में क्रांतिकारी, विद्रोही, धर्म के प्रति उदासीन और स्वच्छंदताप्रिय था। मंटो के सबसे बड़े भाई मुहम्मद हसन और उनसे छोटे भाई सईद हसन दोनों बैरिस्टर थे और दोनों ने विलायत में शिक्षा प्राप्त की थी। उन्होंने दो वर्ष बम्बई में प्रैक्टिस करने के बाद फ़िजी द्वीप समूह में वकालत शुरू कर दी और फिर वहीं बस गये। मुहम्मद हसन दाढ़ी रखते थे और उन्हें हज करने का सौभाग्य भी मिला था। सईद हसन का ज़िक्र मंटो के यहाँ एक

तो उसके रेखाचित्र 'नूरजहाँ' में आया है और दूसरे उसकी कहानी 'राम खिलावन' में।

राम खिलावन धोबी ने जब मंटो की खटमलों से भरी खोली में सईद हसन की तस्वीर देखी और उसे पता चला कि वह मंटो के बड़े भाई हैं तो उसने हैरत से कहा कि 'सईद शालीम बालिश्टर कोलाबे में एक उम्दा फ़्लैट में रहे और मंटो इस खोली में' तो मंटो ने दार्शनिक अंदाज़ में कहा, "दुनिया के यही रंग हैं धोबी ... कहीं धूप कहीं छाँव ... पाँच उँगलियाँ एक जैसी नहीं होतीं।"

इस कथन में न होड़ और ईर्ष्या है, न हीनता की ग्रंथि और न ज़माने से शिकायत। वैसे भी कहानी में यह घटना उस समय की है जब मंटो के दोनों भाई फिजी द्वीप समूह को प्रव्रजन कर चुके थे और समय और धरती की दूरियां द्वेष को मिटा देती हैं।

दूसरी घटना का वर्णन भी मंटो एक लतीफ़े के रूप में ही करता है। बात यों हुई कि सईद हसन बेरिस्टर ने मंटो को सूचना दी कि वह हवाई जहाज़ द्वारा फिजी से बम्बई आ रहे हैं और वहाँ से अमृतसर जायेंगे। मंटो ने उनके ठहरने का प्रबंध उस फ़्लैट में किया जहाँ 'मुसव्विर' के संपादक नज़ीर लुधियानवी और नूरजहां के पति शौकत हुसैन रिज्वी रहते थे। सईद हसन उस फ़्लैट में असबाब के साथ उतरे और खुश हुए। लेकिन फ़िल्मी दुनिया असल में रात की दुनिया है। एक रात भाई जान देर से लौटे तो देखा कि "रिंदी और सरमस्ती अपने बाल खोले नाच रही है। वह हाओ-हू है कि कान पड़ी आवाज़ सुनाई नहीं देती। मालूम नहीं हुआ कि उन्होंने क्या देखा कि सुबह उठते ही अपना सामान बँधवा कर ख़िलाफ़त हाउस चले गये। और मुझे और मेरे दोस्तों को इतने तीखे लहजे में बुरा-भला कहा कि अब मैंने उस वाक़्य को याद किया है तो मुझे यों महसूस होता है कि मेरे कानों में पिघला हुआ शीशा उतर रहा है।"

मंटो के बचपन के हालात यहाँ तक कि विद्यार्थी जीवन के सम्बंध में विस्तृत जानकारी नहीं मिलती। सिवाय इसके कि वह अपनी शरारतों से मुस्लिम हाई स्कूल के हैड गास्टर ख़्वाज़ा मुहम्मद जान बी.ए.,बी.टी. (अलीगढ़) को बहुत तंग किया करता था।

अबू सईद कुरेशी के कथनानुसार 1931 ई. में वह हिन्दू सभा कॉलेज में साइंस के छात्र थे और मंटो आर्ट्स का छात्र। वह लिखते हैं : "एक रोज़ मैंने उसे कॉलेज के दक्षिण-पूर्वी बरामदे में देखा। उसने सुर्ख धारियों की बोस्की की क़मीज पहन रखी थी और सफ़ेद बोस्की का पायजामा। पाँव में चप्पल थी और क़मीज़ के ऊपर ऊँचा-सा (फ़ैशन के मुताबिक) गर्म कोट। वह मेरे एक हिन्दू सहपाठी

प्रकाश की तस्वीर उतार रहा था। प्रकाश को देखकर कॉलेज के फ़ारसीदां सीनियर "ब ख़ाले हिंदुवश बख़्शम समरक़ंद-ओ-बुख़ारा रा"[1] की अनुभूति में निमग्न हो जाते। प्रकाश को मंटो के कैमरे में उतरते देखकर ईर्ष्यालुओं की आँखों ने उन्हें घेर लिया। मैंने मंटो को इससे पहले नहीं देखा था। "यह कौन है ?" मैंने अपने एक सहपाठी से पूछा। जवाब मिला, " टामी !" मैंने यह नाम सुन रखा था। वह अपने स्कूल, मौहल्ले और कॉलेज में इसी नाम से मशहूर था। उसके नामकरण का कारण उस की शरारतें थीं। ख़ैर यह टामी जो उस समय जैसे कि परी को शीशे में उतार रहा था, मुझे कुछ निराले रंग-ढंग का आदमी लगा। मैं इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकता था कि कोई समझदार आदमी बोस्की के पायजामे और लाल धारी की क़मीज़ गोया नाइट सूट में कॉलेज भी आ सकता है ... आशिक अली फ़ोटोग्राफर की दुकान पर टामी से मेरी मुलाकात हुई, "कहिए प्रकाश की तस्वीर कैसी आयी ?" मैंने पूछा। जवाब मिला, "फिल्म ही कब थी कैमरे में !"

अमृतसर में कूचा वकीलान मंटुओं का मौहल्ला था। 1931 ई. में पहली बार अबू सईद क़ुरेशी इस मुहल्ले में स्थित मंटो के मकान में उसके विख्यात कमरे 'दारुल अहमर[2]' में दाखिल हुए। जाहिर है, इस समय मंटो की उम्र उन्नीस वर्ष थी। दरवाज़े के करीब ही दीवार के साथ दो खोखे रखकर उन पर गद्दा और गद्दे के ऊपर मुल्तानी खेस बिछा दिया गया था। सामने उत्तरी दीवार के साथ खिड़की के पास लिखने की मेज़ थी। उसकी दाईं ओर दीवार में एक छोटी-सी अलमारी। जो किताबें अलमारी में नहीं समा सकती थीं, मेज़ पर दीवार के सहारे पड़ी रहतीं। मेज़ के बाईं ओर आतिश दान था जिस पर भगत सिंह की प्रतिमा रखी हुई थी। प्रतिमा के एक ओर तेल का टेबल लैम्प और दूसरी ओर पुराने ढंग के टेलीफोन का रिसीवर। एक पब्लिक टेलीफोन से जब अनेक बार कोशिश करने के बाद भी उसे अपेक्षत नम्बर नहीं मिल सका, उसने यह कहते हुए रिसीवर को खींच कर ओवरकोट की जेब में डाल लिया था कि, "यह क्या फ्राड है ?"

मंटो को किताबें पढ़ने का बहुत शौक था। प्रायः स्वयं को हैडमास्टर साहब का बेटा बताकर किताब विक्रेता से किताबें उधार लिया करता और पढ़ने के बाद उन्हें सैकंड हैंड किताबों के रूप में बेच देता और उस पैसे से सिगरेट खरीद लेता। "मैं घटिया क़िस्म का सिगरेट कभी नहीं खरीदता। घर से मिलने वाले पैसों

---

1. इस शेर का पहला मिसरा इस प्रकार है–
'अगर आं तुर्के शीराज़ी बदस्त आरद दिल.ए.मा रा' भावार्थ : अगर शीराज़वासी वह तुर्क याने महबूब मुझे नसीब हो जाये तो मैं उसके एक काले तिल पर समरकंद और बुखारा कुर्बान कर दूं।–अनुवादक
2. लाल घर

से बढ़िया सिगरेटों का खर्च नहीं उठाया जा सकता।"

उस ज़माने का अमृतसर कैसा था और उसमें मंटो की आवारा ज़िंदगी का क्या तौर था, इसके विवरण मंटो की कहानियों और रेखाचित्रों में जगह-जगह बिखरे पड़े हैं। यह 1932 ई. का ज़माना है और मंटो की उम्र बाईस वर्ष की होगी। उसके मित्रवर्ग में वे लोग थे जो उससे काफ़ी बड़े थे। हफ़ीज़ पेन्टर की दुकान पर समस्याओं पर बहस होती। भंग भी घोटी जाती। चरस भरे सिगरेट भी पिये जाते। शराब के दौर अक्सर चलते। आधी रात के बाद संगीत का दौर शुरू होता। असल में वे सब के सब आर्टिस्ट थे। हालांकि यह नौसिखिए, ज़िंदादिल नौजवानों की महफ़िल थी।"[1].

अमृतसर में खैरदीन की मस्जिद के पास ग्रामोफोन डीजर की दुकान थी। इधर अज़ान होती तो उधर रिकार्ड बजते। लेकिन इस बात पर वहाँ कोई दंगा-फ़साद कभी नहीं हुआ। अलबत्ता छोटी-छोटी बातों पर वहाँ सैकड़ों खून होते रहते। अम्रद परस्ती[2], रंडीबाज़ी पर गुंडों की दो विरोधी पार्टियों में ऐसे-ऐसे मुस्लिम-मुस्लिम और हिंदू-मुस्लिम फ़साद आम थे, जो एक-दो दिन अपनी धाक बिठाकर झाग के मानिंद ग़ायब हो जाते।[3]

दो बार एफ. ए. में फेल होने के बाद मंटो की तबीयत पढ़ाई से बिल्कुल उचाट हो चुकी थी और जुए से दिलचस्पी दिन-ब-दिन बढ़ रही थी। कटरा जयमल सिंह में दीनू या फ़ज्लू कुम्हार की दुकान के ऊपर एक बैठक थी जहाँ दिन-रात जुआ होता था।[4]

"आवारगी के इस जमाने में तबीयत हर समय उचाट-उचाट-सी रहती। एक अजीब किस्म की खुद बुद दिलो-दिमाग़ में हर समय होती रहती थी तकियों में जाता था। कब्रिस्तानों में घूमता था। जलियांवाला बाग में घंटों किसी छायादार पेड़ के नीचे बैठकर क्रांति के सपने देखता। स्कूल जाती लड़कियों को देखकर किसी एक के साथ प्रेम करने के मंसूबे बांधता। बम बनाने के नुस्ख़े तलाश करता। बड़े-बड़े गवैयों के गाने सुनता और शास्त्रीय संगीत को समझने के लिए व्याकुल रहता। उस ज़माने में शेर कहने की कोशिश भी की। मित्रों के साथ मिलकर चरस के सिगरेट पिये, कोकीन खाई, शराब पी मगर जी की बेकली दूर न हुई।"[5]

इस अन्यमनस्कता की स्थिति में जीजे की होटल में आशिक़ फोटोग्राफ़र जब अपनी पतली आवाज़ में अख्तर शीरानी की नज़्म 'ऐ इश्क़ कहीं ले चल' बड़े दर्द से गाता तो मंटो पर इसका बहुत असर होता। "नज़्म मुझे अपने कंधों पर उठा दूर–बहुत दूर अनदेखे जज़ीर में ले जाती।"[6]

ज़ीवन के इस उथल-पुथल और बिखराव के दौर में मंटो का बारी साहब

---

1. कहानी – 'जंटलमैनों का ब्रश
2. किशोर लड़कों से प्रेम करना
3. कहानी –'जंटलमैनों का ब्रश'
4. आग्रा हश्र से दो मुलाक़ातें
5. रेखाचित्र 'रफ़ीक़ ग़ज़नवी'
6. रेखाचित्र–अख्तर शीरानी से चंद मुलाकातें

से संपर्क होता है और मंटो के जीवन में एक क्रांति आ जाती है। मंटो हार्दिक कृतज्ञता के साथ इस बात को स्वीकार करता है कि "आजकल मैं जो कुछ भी हूँ, उसको बनाने में सबसे पहला हाथ बारी साहब का है। अगर अमृतसर में उनसे मुलाकात न होती और लगातार तीन महीने मैंने उनकी संगत में न बिताये होते तो मैं निश्चय ही किसी और रास्ते पर चला गया होता।"[1]

बारी ने मंटो के मानसिक बिखराव को भांप कर उसे पत्रकारिता की ओर प्रवृत्त किया। मंटो तीरथराम फ़ीरोज़पुरी के उपन्यास पढ़ा करता था।

बारी साहब के सान्निध्य के कारण वह आस्कर वाइल्ड और विक्टर ह्यूगो को पढ़ने लगा।[2] जो समय जुआ खेलने में कटता था, अब 'मुसावात' के दफ़्तर में कटने लगा। धीरे-धीरे मंटो ने फ़िल्मी ख़बरों का एक कालम सम्हाल लिया।[3] बारी साहब इतिहास और अर्थशास्त्र के विद्यार्थी थे। उनकी कथा साहित्य में विशेष रुचि नहीं थी। किंतु ऐसा भी नहीं कि वे अपने स्नेही-जनों को अच्छे-बुरे की पहचान न बता सकें। जब स्वस्थ अभिरुचि बढ़ी तो मंटो के कमरे में विक्टर हयूगो, लॉर्ड लिटन, गोर्की, चेख़व, पुश्किन, गोगोल, दास्तोवस्की, आंद्रे जीद, आस्कर वाइल्ड और मोपासां-की किताबें नज़र आने लगीं। बारी साहब की दृष्टि में विक्टर ह्यूगो दुनिया का सबसे बड़ा उपन्यासकार था। बारी साहब चाहते थे कि उसकी Les Miserable का अनुवाद किया जाये। लेकिन उसके विशाल आकार को देखकर हिम्मत न हुई। अलबत्ता मंटो ने Last Days of a Condemned का 'सर गुज़िश्त-ए-असीर' शीर्षक से अनुवाद कर दिया।[4] बारी साहब ने बहुत पसंद किया। इसका संशोधन किया और उर्दू बुक स्टाल के मालिक याकूब हसन को तीस रुपये में बिकवा दिया। याकूब हसन ने इसे बहुत ही थोड़े समय में छापकर प्रकाशित कर दिया। अब मंटो साहब-ए-किताब था।[5]

दूसरी किताब जिसका मंटो ने अनुवाद किया आस्कर वाइल्ड का नाटक 'वीरा' था जिसका सम्बन्ध रूस के आतंकवादियों और अराजकतावादियों की गतिविधियों से था। यह अनुवाद मंटो ने अपने बाल-सखा हसन अब्बास के साथ मिलकर किया था और अख्तर शीरानी से इसमें सुधार कराया था। "किताब हमने खुद सनाई बर्की प्रेस में छपवाई थी। बारी साहब इसके तमाम फ़र्मे खुद अपने कंधों पर लादकर घर लाये थे ताकि सुरक्षित रहें। उन्हें खतरा था कि पुलिस छापा मारकर प्रेस में से सारी किताबें उठा ले जायेगी। मेरे और हसन अब्बास के लिए यह सब प्रसंग बहुत रोचक और ऊर्जादायक था।"[6]

"कहाँ मास्को और कहाँ अमृतसर, लेकिन मैं और हसन अब्बास नये-नये

1. अखतर शीरानी से चंद मुलाकातें
2. रेखाचित्र–अख्तर शीरानी से चंद मुलाकातें
3. आग़ा हश्र से दो मुलाक़ातें
4. मंटो–अबू सईद कुरेशी
5. आगा हश्र से दो मुलाक़ातें
6. रेखाचित्र–बारी साहब

बाग़ी थे। दसवीं कक्षा में दुनिया का नक्शा निकाल कर हम कई बार थल मार्ग से रूस पहुँचने की स्कीमें बना चुके थे। हालांकि उन दिनो फीरोजुद्दीन मंसूर भी कामरेड एफ. डी. मंसूर नहीं थे और सज्जाद जहीर बन्ने मियां ही थे। हमने अमृतसर ही को मास्को मान लिया था और उसी के गली-कूचों में अत्याचारी शासकों का भयानक परिणाम देखना चाहते थे।"[1]

जब 'मुसावात' बंद हो गया और बारी साहब लाहौर के किसी अखबार में चले गये तो मंटो को मन लगाने के लिए कोई काम न रहा। लेकिन उसे लिखने की चाट पड़ गयी थी। वह जुआ खेलने लगा, उसमें अब पहले जैसा आनंद नहीं था।[2]

अचानक बारी साहब फिर उदित हुए एक साप्ताहिक अखबार की योजना लेकर। 'वीरा' अधूरी छपाई के करण मंटो के घर में बंद पड़ी रही। लेकिन 'ख़ल्क़' के सुंदर रूप में प्रकाशन के लिए उन्होंने अपनी पुरानी जमा की गयी चीजों से लाभ उठाया। 'ख़ल्क़' के प्रवेशांक में मंटो की पहली काल्पनिक कहानी 'तमाशा' प्रकाशित हुई।[3]

इसी ज़माने में मंटो ने 'आलमगीर' के रूसी अदब नम्बर का संपादन किया। मंटो, मैक्सिम गोर्की से प्रभावित था। उसने गोर्की पर लेख लिखे और उसकी कहानियों के अनुवाद किये। साम्यवादी कविता और रूसी साहित्य पर आधारित लेख लिखे। काफी अर्से तक अपने नाम के साथ मुफ़क्किर (चिंतक) और कामरेड लिखता रहा। आलमगीर का रूसी नम्बर हो गया तो 'हुमायूं' का फ्रांसीसी अदब नम्बर संपादित किया।[4] यह मंटो के जीवन का बहुत नाजुक दौर था। आर्थिक कठिनाइयाँ बढ़ रही थीं लेकिन ख़र्च का वही हाल था। उसका स्वास्थ्य अलग खराब था। सीने में भारी दर्द होता और वह कभी टिंक्चर आयोडीन मलता और कभी राई का लेप लगाये पड़ा रहता लेकिन दर्द न थमता। तकलीफ़ ज़्यादा होती तो ऐनक उतार कर एक तरफ़ रख देता। टाँगें सिकोड़ कर सीने के साथ लगा लेता। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें फैल-सी जातीं ..... दर्द को दबाने के लिए उसने देशी पीना शुरू कर दी जिसका पौवा उसके कमरे के ऊँचे ताक़चे में कैलेंडर के पीछे छुपा रहता ....लेकिन यह दर्द का इलाज़ नहीं था। डाक्टरों को क्षय रोग का संदेह हुआ। उनका परामर्श था कि मरीज़ को फौरन किसी स्वास्थ्यवर्द्धक स्थान पर चला जाना चाहिए।[5]

उसने कश्मीर के लिए प्रस्थान किया लेकिन बटौत के पड़ाव पर बेगू ने

---

1. रेखाचित्र बारी साहब
2. आगा हश्र से दो मुलाकातें
3. बारी साहब
4. मंटो–अबू सईद कुरेशी
5. मंटो–अबू सईद कुरेशी

उसका रास्ता रोक लिया। वह एक नवयौवना चरवाही थी। सुंदर कश्मीर के पर्यटकों के लिए वह भी वादी की एक सड़क थी। उसकी दुर्दशाग्रस्त देह में मंटो को एक पवित्र आत्मा के दर्शन हुए।[1] बटौत में मंटो तीन महीने रुका। इस निवास और आवाराचलन बेगू के साथ मंटो के प्रेम प्रसंगों की स्मृतियों को 'बेगू', 'लालटेन', 'मौसम' की शरारत', 'विस्री की डली', 'एक ख़त', और 'चुग्द' कहानियों में संजोया गया है। बटौत-निवास का ज़माना लगभग 1935 ई. का है। बटौत से लौटकर मंटो अमृतसर में आजीविका की तलाश करता रहा। कुछ बात नहीं बनी तो नज़ीर लुधियानवी, जो 'मुसव्विर' साप्ताहिक का मालिक था, के निमंत्रण पर बम्बई चला गया और चालीस रुपये मासिक वेतन पर अख़बार की संपादकी सँभाल ली।

बम्बई में मंटो 1935 से 1947 तक रहा। इस दौरान में डेढ़ वर्ष का अंतराल उस समय आया जब मंटो रेडियो की नौकरी के सिलसिले में दिल्ली गया। महायुद्ध के बावजूद यह शहरों की दुल्हन बम्बई के सौंदर्य और यौवन का ज़माना था। बम्बई की महानगरीय संस्कृति अपनी बहारें लुटा रही थी। उर्दू के दो कहानीकारों ने बम्बई के परिवेश को अपनी कहानियों में जिस रूप में अभिव्यक्ति दी है, उसकी मिसाल कहीं और नज़र नहीं आती। ये दो कहानीकार हैं अज़ीज़ अहमद और सआदत हसन मंटो। अज़ीज़ अहमद के यहाँ बम्बई के उच्चवर्गीय जीवन तथा मंटो के यहाँ निम्नवर्गीय जीवन के प्रतिबिम्ब मिलते हैं। मंटो पहले बाई कल्ला की खटमलों से भरी एक कोठरी में रहता था। लेकिन जब आर्थिक स्थिति सुधरी तो बाई कल्ला में ही क्लियर रोड पर बने हुए एडल्फ़ी चैम्बर्स के एक फ़्लैट में था। इन पंक्तियों के लेखक को उस फ़्लैट में मंटो से भेंट करने का सुअवसर मिला है।

बाई कल्ला और नाग पाड़ा के जीवन की धडकनों को मंटो की कहानियों में महसूस किया जा सकता है। इस इलाके में उर्दू अखबारों के दफ्तर, मुसलमानों व यहूदियों की चालें, भैंसों के तबेले, कोचबानों की तंग और अंधेरी खोलियां, घोड़ों के अड्डे, आइनों वाली ईरानी इस्लामी होटलें, पारसी डॉक्टरों, चीनी दंतकारों और हकीमों के दवाखाने और बम्बई का सबसे बड़ा कहवाख़ाना फारस रोड था। यही वह इलाका है जहाँ से टंटा, मस्तक, मस्का पालिश, मालपानी, दांदा,घोटाला, जगार, फोकट और कंडम आदि शब्द कहानियों के माध्यम से उर्दू में आये। मिसेज़ डी कोस्टा, मिसेज़ डी सिल्वा, केशू लाल खारी मूंगफली वाला, सौगंधी, मूज़ैल मम्मद भाई और अख़बार बेचने वाले, पान वाले, बाहर वाले (होटलों पर काम करने वाले लड़के) क़लई वाले ऐसे सशक्त चरित्र हैं कि जिन्हें आसानी से नहीं भुलाया

1. मंटो.अबू सईद क़ुरेशी

जा सकता। वैसे तो मंटो के यहाँ अमृतसर, लाहौर, दिल्ली और पूना जैसे शहरों का चित्रांकन भी प्रशंसनीय है। लेकिन बम्बई के वातावरण को तो उसने अपनी पाँचों इंद्रियों से आत्मसात किया था। न सिर्फ़ यह कि मंटो का भाव बोध यथार्थवादी और शहरी था बल्कि उसका वैचारिक, नैतिक और सामाजिक व्यवहार भी बहुत हद तक रेडीकल, लिबरल और आधुनिक था जो कि एक महानगर के रंगारंग सांस्कृतिक जीवन की देन था। मंटो के यहाँ ग्रामीण और प्राकृतिक जीवन पर बहुत कम कहानियाँ मिलती हैं। गाँव, प्रकृति और संस्कृति और अतीत के नास्टेल्जिया जैसी उसके यहाँ कोई चीज़ नहीं है। महानगरीय बोध एक यथार्थवादी कलाकार के लिए कम-से-कम भावनात्मक समस्याओं की ओर प्रवृत नहीं होने देता।

बम्बई और दिल्ली का यह ज़माना मंटो के जीवन का सबसे सुहाना और सुनहरा दौर था। दिल्ली में मंटो आल इंडिया रेडियो से सिर्फ़ एक-डेढ़ वर्ष जुड़ा रहा। लेकिन यह संक्षिप्त समय भी इतने हंगामों से भरा हुआ था कि समकालीन साहित्यकारों द्वारा मंटो पर लिखे गये रेखाचित्रों और लेखों में इनका बार-बार ज़िक्र हुआ है और स्वयं मंटो अपने शब्द-चित्रों में इनका ज़िक्र करता नहीं थकता। हिकायत-ए-यार (दोस्त की कहानी) इतनी मीठी थी कि सभी ने उसे चटख़ारे ले-लेकर बयान किया। उस समय रेडियो में पतरस, नून मीम राशिद, कृश्नचंदर, राजिन्दर सिंह बेदी, उपेंद्र नाथ अश्क और दूसरे बहुत से उर्दू लेखक कार्यरत थे। उनकी महफिलों, नोक झौंकों, आत्मीयताओं और प्रतिद्वंद्विताओं ने मंटो की जीवनी में भड़कीली रंग भरे। रेडियो उस ज़माने में ग्लैमर की दुनिया का एक बड़ा आकर्षण था। आवाज़ का जादू चल पड़ा था और रेडियो के श्रोताओं के मन में रेडियो रूपक लिखने वालों की एक रोमानी और जादुई छवि बन चुकी थी। जब मंटो ने सौ नाटक पूरे किये तो उसे आशा थी कि 'आवाज़' पत्रिका के मुखपृष्ठ पर उसकी तस्वीर छपेगी। उसकी एक छोटी सी तस्वीर भीतर के पृष्ठों में छपी। हालांकि मुखपृष्ठ पर प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित गायकों की तस्वीरें छपती रहती थीं। मुखपृष्ठ पर उसकी तस्वीर नहीं छपी लेकिन उसके डेढ़ सौ रुपये मासिक वेतन में वृद्धि हो गयी।

मंटो ने दिल्ली में बहुत सुखी जीवन बिताया। बम्बई का ज़माना भी ऐसा ही था। अंतिम समय में मद्यपान के कारण संतुलन बिगड़ गया था। वह धीरे-धीरे एल्कोहलिक बन रहा था। बम्बई उस ज़माने में फिल्म निर्माण का सबसे बड़ा केंद्र था। मंटो विभिन्न कंपनियों में कहानियाँ और संवाद लिखने का काम करता रहा। शुरू में सरोज मूवीटोन, हिंदुस्तान सिनेटोन, इंपीरियल कंपनी और बाद में फ़िल्मिस्तान और बाम्बे टाकीज़ से जुड़ा रहा। फ़िल्मी सितारों पर उसके रेखा-चित्रों से पता चलता है कि वह फ़िल्मी दुनिया में इतना डूबा हुआ होने के बावजूद

अपने व्यक्तित्व को उसके गुनाहों से और रचनात्मक सरगर्मियों को उसके प्रभावों से बचा लाया था। मंटो ने वैसे तो बहुत-सी फ़िल्मों में संवाद और दृश्यबंध लिखे लेकिन उसकी अपनी कहानी और संवादों के साथ जो फ़िल्में मशहूर हुई उनमें 'अपनी नगरिया', 'चल चल रे नौजवान' और विशेष रूप से 'आठ दिन' उल्लेखनीय हैं। 'आठदिन' में उपेंद्रनाथ अश्क और राजा मेहदी अली खाँ के साथ स्वयं मंटो ने भी एक छोटा-सा रोल किया था। यह बहुत अच्छी कामेडी थी और बाबू राव पटेल ने अपने रिव्यू में मंटो की कहानी की बहुत प्रशंसा की। 'मिर्ज़ा ग़ालिब' की कहानी भी मंटो ने ही लिखी थी। लेकिन फ़िल्म, मंटो के पाकिस्तान चले जाने के बाद सोहराब मोदी के निर्देशन में फ़िल्माई गयी। इसके संवाद राजिंदर सिंह बेदी ने लिखे थे। यह फ़िल्म बाक्स आफ़िस पर सफल रही।

बम्बई में ही मंटो की सफ़िया बेगम से शादी हुई। मंटो ने उस शादी का बहुत ही दिलचस्प हाल 'मेरी शादी' शीर्षक से लिखा है। मंटो की माँ अमृतसर से बम्बई आयी थीं और अपनी बेटी याने मंटो की बहन के यहाँ ठहरी हुई थीं। मंटो के बहनोई ने मंटो का अपने यहाँ आना वर्जित कर रखा था। इसलिए मंटो जब माहम पहुँचा तो उसकी माँ इकबाल बेगम के फ़्लैट से नीचे उतर आयीं और मंटो को लेकर पड़ोस की एक बिल्डिंग में चली गयीं, जहाँ उन्होंने कश्मीर मूल के एक परिवार की लड़की पसंद कर रखी थी। मंटो ने भी उसे पसंद कर लिया। सफ़िया के पिता अफ़्रीका में पुलिस इंस्पैक्टर थे। एक दिन खाना खा रहे थे कि किसी बलवे की सूचना मिली। यह कह कर गये कि अभी आता हूँ। लेकिन किसी हब्शी ने ख़ंजर से हत्या कर दी। सफ़िया के ताया वहाँ के सांसद थे। वे सआदत को देखने के लिए अफ़्रीका से आये। लडकी के चाचा मलिक हसन पुलिस महकमें में थे। पिता की मृत्यु के बाद सफ़िया का पालन पोषण उन्होंने ही किया था। उनके पूछने पर मंटो ने बताया कि उसकी नौकरी अस्थायी है। वेतन नहीं मिलता। कभी-कभार अग्रिम मिल जाता है, जिससे वह बड़ी कठिनाई से गुज़र-बसर कर पाता है। इस अभावग्रस्तता के बावजूद हर शाम को एक बोतल बीयर पीता है। इस स्पष्टवादिता के बावजूद मंटो का सम्बन्ध स्वीकार कर लिया गया। क्योंकि वह कश्मीरी परिवार में शादी करना चाहते थे। मंटो लिखता है, "मैंने सुना तो चकरा गया। मैं तो शादी के इस क़िस्से को सिर्फ़ एक मज़ाक़ समझ रहा था। इसके अलावा मुझे क़तई यक़ीन नहीं था कि मुझे कोई होशमंद इन्सान लड़की देगा। मेरे पास था ही क्या ? एंट्रेंस पास–वह भी थर्ड डिवीज़न में और नौकरी भी जगह, जहाँ तनख़्वाह की बजाय पेशगी मिलती थी .... और पेशा फ़िल्म, अख़बार नवीसी, ऐसे लोगों को शरीफ़ आदमी मुंह कब लगाते हैं। बहरहाल अबू सईद कुरेशी के शब्दों में, "मुंसिफ साहब का बाग़ी बेटा क़ानून साज़ की भतीजी और क़ानून

के रखवाले की बेटी को ब्याह लाया।"

सफ़िया के साथ मंटो का पारिवारिक जीवन बहुत सुखमय रहा। सफ़िया से मंटो को एक लड़का और तीन लड़कियाँ हुईं। लड़का आरिफ डेढ़ वर्ष का होकर चल बसा। यह घटना दिल्ली की है। मंटो ने इस घटना पर एक दिल हिला देने वाली कहानी 'खालिद मिया' लिखी है। लड़के का नाम आरिफ था। मंटो अपनी तीनों लड़कियों से बहुत प्यार करता था। अपने जीवन के अंतिम वर्षों में वह शराब की लत, गिरते हुए स्वास्थ्य और आर्थिक तंगी के कारण उनके भविष्य को लेकर बहुत चिंतित रहता था। तीनों लड़कियों और सफ़िया को भी मंटो का बहुत ध्यान रहता था। एक पत्र में मंटो लिखता है : "जब से यहाँ आया हूँ, सफ़िया ने मुझसे कोई फर्म़ायश नहीं की है और न ही निकहत, नुज्हत और नुस्रत में से किसी ने .... बाज़ मनहूस साल ऐसे भी आये थे कि बच्ची की सालगिरह थी और जेब में फूटी कौड़ी नहीं। मंटो के पाकिस्तान जाने के कारण अलग-अलग बताये जाते हैं। मसलन यह कि मंटो समझता था कि पाकिस्तान में उसे बड़े मकानात एलाट हो जायेंगे। मंटो का यह विचार इस्मत को बहुत बुरा लगा था। लेकिन यह उस ज़माने में मुहाजिरों की एक सामान्य चिंता थी और संभव है मंटो ने भी अपने कमज़ोर क्षणों में कभी ऐसा सोचा हो। यह और बात है कि पाकिस्तान जाने के बाद उसने कोई एलाटमैंट नहीं कराया। एक अन्य कारण यह बताया जाता है कि अशोक कुमार को मंटो की कहानी पसंद न आयी और इस्मत की कहानी पर 'ज़िद्दी' और कमाल अमरोही की कहानी पर 'महल' फिल्म बन गयी। इससे मंटो ने बहुत अपमानित महसूस किया और पाकिस्तान चला गया।

एक-कारण यह भी बताया जाता है कि जब अशोक कुमार ने चाचा के साथ मिलकर बाम्बे टाकीज़ ख़रीद लिया तो मंटो भी उसमें शामिल हो गया। उस समय बम्बई में हिंदू-मुस्लिम दंगे शुरू हो चुके थे। बम्बई टाकीज़ में सब पैसे वाली आसामियां मुसलमानों के हाथों में थीं। इस कारण हिंदू कार्यकर्ताओं के मन में सावक और अशोक कुमार के प्रति घृणा की भावना उत्पन्न हो रही थी। मंटो स्वयं को अपराधी महसूस करने लगा कि यदि बम्बई टाकीज़ को कुछ हो गया तो अशोक को क्या मुंह दिखाऊंगा ? कुछ दिन बाद नजीर अजमेरी की फ़िल्मी कहानी 'मजबूर' पर मंटो ने टीका-टिप्पणी की और कुछ परिवर्तन सुझाये तो नज़ीर ने अशोक और चाचा से कहा कि मंटो को आप ऐसी चर्चाओं में न बिठाया करें, वह क्योंकि स्वयं कहानीकार है, इसलिए द्वेष रखता है। "मैंने बहुत गौर किया, कुछ समझ न आया। आखिर मैंने अपने-आप से कहा—मंटो भाई आगल रास्ता नहीं मिलेगा, कार मोटर रोक लो। उधर बाजू की गली से चले जाओ। और मैं चुपचाप बाजू की गली से पाकिस्तान चला गया।"

और मंटो सचमुच में चुपचाप चला गया। जाते समय किसी से नहीं मिला। सिर्फ उसका मित्र श्याम उसे ज़हाज़ पर विदा करने आया था। श्याम मंटो का बहुत गहरा दोस्त था। लेकिन एक बार जब कुछ सिख शरणार्थियों ने अपनी विपदा बयान की तो श्याम बहुत बेचैन हो उठा। उस समय मंटो ने उससे पूछा, "मैं मुसलमान हूँ, क्या तुम्हारा जी नहीं चाहता कि मुझे कत्ल कर दो ?" श्याम ने बड़ी गंभीरता से उत्तर दिया, "इस वक़्त नहीं। लेकिन उस वक्त जब कि मैं मुसलमानों के ढाये हुए जुल्मों की दास्तान सुन रहा था .... मैं तुम्हें क़त्ल कर सकता था।" मंटो लिखता है, "श्याम के मुँह से यह सुनकर मेरे दिल को जबर्दस्त धक्का लगा। उस वक्त शायद मैं भी उसे कत्ल कर सकता। लेकिन बाद में जब मैंने सोचा और उस वक़्त, इस वक़्त में ज़मीन आसमान का फ़र्क़ महसूस किया तो इन तमाम फसादों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि मेरी समझ में आ गयी, जिसमें रोज़ाना सैंकड़ों बेगुनाह हिंदू और मुसलमान मौत के घाट उतारे जा रहे थे।" (मुरली की धुन)

वास्तव में दंगों और पाशविक हिंसा का मंटो के मन पर गहरा प्रभाव पड़ा था। वह लिखता है, "वह लहू किसका है जो हर रोज़ इतनी बेदर्दी से बहाया जा रहा है ? वे हड्डियाँ कहाँ जलायी या दफ़न की जायेंगी जिन पर से मज़हब का गोश्त-पोस्त चीलें और गिद्ध नोच-नोच कर खा गये !" (मुरली की धुन)

उसने अपनी बेमिसाल कहानी 'सहाय' में पाकिस्तान जाने की घटना को प्रभावशाली रूप से अभिव्यक्ति दी है। मंटो की मानव प्रेमी आत्मा को पाकिस्तान में भी कैसे शांति मिलती ? क्या हिंदुस्तान और क्या पाकिस्तान ? मंटो के कदम तो मनुष्य की पाशविकता देखकर इस दुनिया से उखड़ चुके थे। यही कारण है कि वह पशु बनते हुए मनुष्य में मनुष्यता के सूक्ष्म चिन्ह देखकर भी उसके प्रति आश्वस्त और आशान्वित बना हुआ था। कहने का अभिप्राय यह है कि पाकिस्तान जाने के मूल में आहत अहं के अतिरिक्त ऐसे अनेक मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक कारण थे, जिनका हमें तो क्या स्वयं मंटो को भी पता नहीं था।

1948 ई. में मंटो पाकिस्तान चला गया। 18 जनवरी, 1955 में तेतालीस वर्ष की आयु में लाहौर में उसका निधन हुआ। यह सात वर्ष का अंतराल मंटो के जीवन का सबसे कठिन समय था। जीवन के अंतिम तीन वर्षों में तो अस्वास्थ्य और आर्थिक अभावों की पराकाष्ठा रही। बम्बई के जीवन की संपन्नता और लाहौर के जीवन की अभावग्रस्तता में विचित्र विरोधाभास है। उसने इस्मत को लिखा भी कि, "कोशिश करके मुझे हिंदुस्तान बुलवा लो और अगर मुकर्जी से कह कर बम्बई बुलवा लो तो बहुत अच्छा हो।" पाकिस्तान में मंटो की आय का कोई साधन नहीं था। स्टूडियो चल नहीं रहे थे, इसलिए फिल्मों के ज़रिए रोज़ी कमाने के जो सपने मंटो ने देखे थे, वे साकार न हो सके। अंतिम दिनों में तो मंटो पत्नी और तीन

लड़कियों के साथ ससुराल में ही रहने लगा था। ज़ाहिर है कि उस जैसे अहंवादी व्यक्ति के लिए यह स्थिति कितनी पीड़ादायक रही होगी।

लेकिन यह दौर सृजन की दृष्टि से मंटो के जीवन का बेहतरीन दौर था। इन सात वर्षों में मंटो ने एक सो सत्ताईस कहानियाँ लिखीं जिनमें आखिरी जमाने की वे बीस कहानियाँ भी शामिल हैं जो 'नुकूश' के मंटो विशेषांक में प्रकाशित हुई थीं। और जिनका कलात्मक मूल्य असंदिग्ध है। बारह कहानी संग्रहों के अतिरिक्त दो निबंध संग्रह, दो रेखाचित्र-संग्रह, अपनी कहानियों पर मुकदमों की पेशी की व्यथा-कथा का एक संग्रह और 'बग़ैर उनवान के' शीर्षक एक लघु उपन्यास प्रकाशित हुए। 'स्याह हाशिए' एक और छोटी-सी किताब है जिसमें दंगों पर आधारित लतीफ़े संगृहीत हैं।

परिमाण ही नहीं गुणवत्ता की दृष्टि से भी मंटो की कहानियाँ उस दौर में नयी बुलंदियों को छूने लगीं। थोड़े बहुत अंतर के साथ सभी कहानियाँ कलात्मक पूर्णता, शब्दों की मितव्ययिता, शिल्पगत प्रयोग और विषयों की विविधता के अच्छे उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। गति इतनी थी कि अनेक कहानियाँ रोज़ाना एक-एक के हिसाब से लिखी गयीं। आश्चर्य होता है कि इतनी तीव्रता, इतने तारतम्य और इतनी स्वाभाविकता के साथ ऐसी मूल्यवान रचनाएं कैसे अस्तित्व में आयीं ? प्रायः कहा जाता है कि फ़िल्मों में काम न मिलने के कारण लेखनी ही मंटो की आजीविका का साधन थी। इससे उसके अधिक मात्रा में और अनवरत लेखन का कारण तो मालूम होता है लेकिन कल्पनाशीलता के चमत्कार पर कोई रोशनी नहीं पड़ती। ध्यान रहे कि बड़े कलाकार के अधिक मात्रा में और अनवरत लेखन के मूल में उसकी सर्जनात्मक सम्पन्नता ही होती है।

शराब पीने में असंतुलन की शुरुआत बम्बई में ही हो गयी थी। पाकिस्तान पहुँचने के बाद शराब ने उसे पीना शुरू कर दिया। आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण उसने बोतल के लिए कहानी लिखना शुरू कर दिया। अखबार के दफ़्तर जाता, कुर्सी पर उकड़ूँ बैठकर कहानी लिखना, पारिश्रमिक लेता और बोतल खरीदता। अंतिम दिनों में तो वह मित्रों और परिचितों से पैसे मांगने में भी नहीं हिचकता था। कई बार हस्पताल गया। जिगर का सीरोसिस हो गया। डॉक्टर ने शराब को ज़हर बताया और मंटो ज़हर पीता रहा। उन्माद की स्थिति उत्पन्न हो गयी। भिन्न-भिन्न प्रकार की शंकाएं हो गयीं। बहकी-बहकी बातें करता, काल्पनिक चेहरे देखकर उनसे बातें शुरू कर देता। कानों में तरह-तरह की आवाज़ें आतीं। 17 जनवरी को वह काफ़ी शाम बीतने के बाद घर आया। थोड़ी देर बाद खून की उल्टी हुई। मंटो के भानजे हामिद जलाल का बेटा पास खड़ा था। उसे यह कह कर टाल दिया कि कुछ नहीं, यह तो पान की पीक है। उसे ताकीद

INSTITUT OF ADVANCED STUDY
Acc. No. 94826

कर दी कि वह इसका किसी से ज़िक्र न करे। रात के पिछले पहर भारी दर्द महसूस हुआ। पूरा घर जाग उठा। डॉक्टर ने कहा, हस्पताल पहुँचा दिया जाये। मंटो बोल उठा, "अब बहुत देर हो चुकी है। मुझे हस्पताल न ले जाओ और यहीं सुकून से पड़ा रहने दो। कुछ देर बाद उसकी आँखों में अजीब चमक पैदा हुई। धीरे से बोला, "मेरे कोट की जेब में साढ़े तीन रुपये पड़े हैं, उनमें कुछ और पैसे मिलाकर थोड़ी सी व्हिस्की मंगा दो।" उसकी तसल्ली के लिए एक पौवा मंगवा लिया गया। उसने बोतल को बड़ी विचित्र और संतुष्ट दृष्टि से देखा और कहा, "मेरे लिए दो पैग बना दो।" हामिद जलाल लिखते हैं : "मंटो शराब के सामने उतना ही बेबस था जितना कि आदमी मौत के सामने होता है और मंटो जानता था कि शराब उसकी जानी दुश्मन है। मौत है।" मंटो ने हामिद जलाल को कभी एक कहानी सुनायी थी। उस आदमी की, जिसने दोस्तों के मना करने के बावजूद एक ज़हरीला सांप पाल रखा था और एक दिन सांप ने सारा ज़हर उसके ज़िस्म में उतार दिया तो उसने भी साँप को पकड़ लिया और उसका सिर काट कर फैंक दिया। मरते समय शराब की तलब इसलिए तो नहीं थी कि जान के दुश्मन को गले से लगा लेता, ज़हर की अंतिम बूँद में डुबो देता ! कुछ भी हो, मंटो ने अंतिम क्षण तक स्वयं के साथ निश्छल व्यवहार किया और कम से कम पश्चाताप करने का ढोंग नहीं किया। उसने भी साँप पकड़ लिया और उसका सिर काट कर फेंक दिया।

एम्बुलैंस दरवाज़े पर आकर रुकी। मंटो ने शराब की ही इच्छा व्यक्त की । एक चमचा व्हिस्की मुँह में डाल दी गयी। लेकिन शायद एक बूँद गले के नीचे उतरी होगी। बाकी शराब मुँह से गिर गयी और मूर्च्छा आ गयी। मंटो की मृत्यु हस्पताल पहुँचने से पहले एम्बुलेंस में ही हो गयी।

मंटो के व्यक्तित्व के बारे में भिन्न-भिन्न अनुमान लगाये गये हैं। उसके व्यक्तित्व को हानि पहुँचाने की कोशिश स्वयं उन लोगों ने की, जिन्हें बुलाकर मंटो ने फ़िल्मों में काम दिलवाया। ऐसे लोगों के सम्बन्ध में मंटो पूरी तरह मौन रहा है। उसने अपने सम्बन्ध में कोई चीज़ ढकी-छुपी नहीं रखी। अपनी कमज़ोरियों को वह खुले आम स्वीकार करता था। शराब उसकी सबसे बड़ी कमज़ोरी थी। युवावस्था के आरंभ में उसने दूसरे नशे भी किये थे। जुए की भी उसे लत पड़ी थी। कोठों की हेरा-फेरी का भी शौक़ था। लेकिन इन मानवीय दुर्बलताओं से अलग हटते हुए वह अत्यंत शालीन, कोमल हृदय और ईमानदार व्यक्ति था। वह एक बहुत ही अच्छा पति और प्रेम करने वाला पिता था। उसने कभी किसी के साथ छल-कपट नहीं किया। व्यक्तिगत कटुता को शत्रुता में नहीं बदला और ओछे हथियारों से बदला नहीं लिया। अपनों और परायों ने उस पर जितने पत्थर बरसाये,

इसकी मिसाल दुनिया के साहित्य में दिखाई नहीं देती। लेकिन उसने सब कुछ प्रसन्नता के साथ सहन कर लिया। क्योंकि उसे स्वयं पर विश्वास था। उसने न किसी के विरोध में लेख लिखे, न किसी की नक़ल उतारी, न किसी विरोधी को लेकर अपने मन में ग्रंथि बनायी। साहित्यिक नोंक-झोंक के लिए उसके पास समय ही नहीं था। छवि-निर्माण जो हमारे साहित्य की सबसे बड़ी लज्लास्पद प्रवृत्ति है, उससे वह कोसों दूर था। मृत्यु के बाद मंटो पर अनगिनत लेख और रेखाचित्र लिखे गये लेकिन उसके जीवन में उस पर जो कुछ भी लिखा गया, वह उसके विरोध में था और अपशब्दों व लांछनों की उसमें भरमार थी। उसने कभी स्वयं पर लेख, भूमिकाएँ और समीक्षाएँ लिखवाने की फ़र्मायश नहीं की। इसके बावजूद वह जब तक जिया, साहित्य पर छाया रहा। उसकी हर कहानी और हर पुस्तक का प्रकाशन एक साहित्यिक घटना होती। कभी ऐसा नहीं हुआ कि उसकी कोई महत्त्वपूर्ण कहानी छपी हो और साहित्य जगत में भूचाल की स्थिति पैदा न हुई हो। चारों ओर उसकी चर्चा होती। कई कहानियों ने बड़े तूफ़ान खड़े किये। मुकदमे चले। बहसें छिड़ीं और चारों ओर एक हंगामा मच गया। मंटो की छवि मीडिया और लेखों द्वारा बनायी हुई नहीं है, बल्कि स्वयं उसकी कहानियों द्वारा बनायी हुई है। यह एक बहुत बड़े कलाकार की छवि है जिसे जीवन की निरर्थकता की, उसकी त्रासदी की उसके अर्थहीन दुःख की इतनी गहरी अनुभूति है जिसकी मिसाल दोस्तोवस्की के सिवाय कहीं और नज़र नहीं आती। उसकी वेदनानुभूति ईसा और बुद्ध की करुणा के समान है। किसी अन्य कलाकार ने गिरे-पड़े लोगों के जीवन को ऐसी पथरीली आँखों से नहीं देखा जिनमें खून के आँसू भी पत्थर के टुकड़े बन गये हों

बाह्य व्यक्तित्व तो मात्र दिखावा होता है। व्यक्ति भीतर से कैसा है, क्या है, यही वास्तविक पूंजी है। शेष जो कुछ है, झूठा, कसैला, सिक्काबंद दिखावा है। मंटो भीतर से क्या था, कैसा था, यह जानने के लिए उसके पत्रों (अहमद नदीम क़ासमी के नाम) से निम्नोद्धृत अंश देखिए, जो उसके व्यक्तित्व का ऐसा दर्पण हैं जिसकी मिसाल उर्दू साहित्य में कहीं और नज़र नहीं आती :

"मैं एक अर्से से अपने आस्तित्व को तुर्गनेव के शब्दों में छकड़े के पाँचवे निरर्थक पहिए की तरह व्यर्थ समझता हूँ। इसलिए मैंने चाहा कि किसी के काम आ सकूं। खाई में पड़ी ईंट अगर किसी दीवार की चिनाई में काम आ सके तो इससे बढ़कर वह और क्या चाह सकती है ?"

"मैं दरअस्ल आजकल उस जगह पहुँचा हुआ हूँ जहाँ यक़ीन और इनकार में तमीज़ नहीं हो सकती। जहाँ आप समझते हैं और नहीं भी समझते। किसी क्षण ऐसा महसूस होता है कि दुनिया सारी की सारी मुट्ठी में चली आयी है और कई

बार यह विचार मन में आता है कि हम सब हाथी के जिस्म पर चींटी की तरह रेंग रहे हैं।"

"कुछ भी हो मुझे आत्म संतोष नहीं है। मैं किसी चीज़ से संतुष्ट नहीं हूँ। हर चीज़ में मुझे एक कमी-सी महसूस होती है। मैं खुद अपने-आप को अधूरा समझता हूँ। मुझे अपने आपसे कभी सांत्वना नहीं मिलती। ऐसा महसूस होता है कि मैं जो कुछ हूँ, जो कुछ मेरे अंदर है, वह नहीं होना चाहिए। इसकी बजाय कुछ और ही होना चाहिए !"

—जनवरी, 1939

2

नाटक, निबंध और रेखाचित्र

नाटक

मंटो ने लगभग सौ के आस-पास नाटक लिखे जो विधिवत रूप से रेडियो से प्रसारित होते रहे। जब रेडियो से सम्बंध टूट गया तो नाटक लिखने में मन नहीं लगा। मंटो को संवाद लेखन का बड़ा अभ्यास था। बात से बात पैदा करना, बात का बतंगड़ बनाना, बातचीत को बहस में, कारोबारी बातचीत को झड़प में, पति-पत्नी की नोंक-झोंक को झगड़े में और झगड़े को रोचक नाटक में बदलने के सब गुर उसे याद थे। मंटो के 'तीन औरतें' और 'आओ' में संगृहीत आरंभिक नाटक संवादों के बल पर लिखे गये हैं। इनकी व्यंग्य-क्षमता हास्यप्रद स्थितियों और विनोदी पात्रों की पारस्परिक क्रियाओं का परिणाम कम है, इसका सम्बन्ध नाटकों की चमकदार और संकोचरहित संवाद योजना से है। 'तीन औरतें' के नाटकों में तो नाटकीयता का अभाव है। सिचुएशन कॉमेडी का आनंद इस बात में है कि हमें पता न चले कि जो स्थिति पैदा हो रही है उसमें पात्र क्या करेंगे ? लेकिन 'तीन औरतें' के नाटकों में हम जान लेते हैं कि तीन शांतिप्रिय स्त्रियाँ झगड़ालू साबित होंगी और तीन ख़ामोश स्त्रियाँ बहुत बातूनी। और रोगी को सांत्वना देने वाली तीन स्त्रियाँ ऊटपटांग सुझावों और नुस्ख़ों से रोगी की जान को मुसीबत खड़ी कर देंगी। अतएव इन नाटकों के कुछ संवादों के बाद ही हमें यह एहसास होने लगता है कि ख़ामोश स्त्रियों को बातूनी बनाने के लिए नाटककार बातूनी स्त्री की बात को रोचक बनाये बिना उसे फैला रहा है। और हमें यह भी महसूस होता है कि हमें हंसाने के लिए वह रोगी को सांत्वना देने वाली स्त्रियों के मुंह से ऐसे उलटे-सीधे इलाज और टोटके बयान कर रहा है जो हास्य की मनोवैज्ञानिक अपेक्षाओं के अनुकूल नहीं हैं। अच्छी कॉमेडी में दो बातें होती हैं। एक तो यह कि स्थिति और संवादों में किसी अप्रत्याशित बात के द्वारा हास्य पैदा किया गया हो। दूसरी यह कि ऐसी सिचुएशन पैदा की जाये कि दर्शक तो जानें कि क्या हो रहा है लेकिन नाटक के पात्रों को पता न चले कि वे कौन-सी मुसीबत को दावत दे रहे हैं। क्योंकि ये नाटक स्थिति से अधिक संवादों पर टिके हुए हैं, इसलिए सिचुएशन कॉमेडी की इन अपेक्षाओं का ध्यान नहीं रखा गया। अतएव वही नाटक

कुछ आनंद की अनुभूति करा पाते हैं जिनमें संवादों के माध्यम से स्थिति का निर्माण नहीं किया गया, बल्कि संवाद अपने-आप में रोचक बन गये हैं। 'तीन खूबसूरत औरतें' में स्त्रियों की सज-धज और बनाव-सिंगार से सम्बन्धित बातचीत में मूर्खता का वह स्पर्श कुछ मनोरंजन कर देता है जिससे सिंगार में व्यस्त स्त्रियाँ मूर्ख चुहियां दिखाई देती हैं। "तीन सुलहपसंद औरतें" फिर इसलिए रोचक बन पड़ा है कि स्त्रियों के परस्पर उपालंभ के वर्णन में मंटो की लेखनी खूब गुल खिलाती है। 'आओ' में ग्यारह नाटक हैं। किशोर, उसकी पत्नी लाजवंती और उनका मित्र नरायन सभी नाटकों के स्थायी पात्र हैं। कुछ नाटकों में एक-दो दूसरे पात्र भी शामिल हो जाते हैं। इन नाटकों की विषय-वस्तु ऐसी है कि यदि नरायन या दूसरे पात्र शामिल न होते तो नाटक पति-पत्नी की नोक-झोंक से आगे न बढ़ पाता। लेकिन नोक-झोंक स्थिति में और स्थिति रोचक कथानक में बदलती हैं।

'आओ कहानी लिखें,' अत्यंत रोचक नाटक है। इसमें किशोर, लाजवंती और नरायन मिलकर कहानी लिखने की चेष्टा करते हैं। यह चेष्टा स्वयं उनकी स्थिति, स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के बारे में उनके विचार और उनके परस्पर भावनात्मक व्यवहार का दर्पण बन जाती है। पति-पत्नी जिस तरह कहानी लिखवाते हैं और हर घटना पर परस्पर झगड़ते हैं, इससे नाटक की रोचकता बढ़ जाती है।

'आओ खोज लगायें' में किशोर और लाजवंती के घर चोरी हो जाती है और पति-पत्नी का नौकर तमाम चीज़ें लौटा जाता है, कि आप लोग बहुत घटिया चीज़ें इस्तेमाल करते हैं। अंत में वह विदा होते हुए नरायन का सोने का सिगरेट केस चुरा ले जाता है। चालाक चोर क़िस्से-कहानियों का हमेशा रोचक पात्र रहा है और इस कारण यह नाटक भी रोचक बन गया है।

'आओ' के नाटकों में सबसे अच्छा नाटक है, 'आओ चोरी करें'। कारण यह है कि इसमें हास्य नाटक की वे उलझनें पैदा हो गयी हैं जिनमें फंसे हुए पात्रों की बौखलाहट पर अनायास हंसी आ जाती है। पत्नियों ने पतियों को और पतियों ने पत्नियों को वश में करने के मंत्र दिल्ली के किसी राम प्रशासन जी से मंगाये हैं और लाजवंती मिसेज़ नरायन का पार्सल खोल लेती है और खूब गड़बड़ घोटाले पैदा होते हैं।

'करवट' और 'मंटो के ड्रामे' में कुल छब्बीस नाटक संगृहीत हैं। इनमें से अधिकांश नाटक सस्पेंस, थ्रिलर और फिल्मी कहानियों के ढंग के नाटक हैं। इनमें विचित्र संयोगों, विस्मयकारी घटनाओं, अप्रत्याशित परिणाम, नाटकीय संवादों और उत्तेजनामूलक स्थितियों से काम लिया गया है। ये नाटक सामान्य मनोरंजन की सतह से ऊपर नहीं उठ पाते। इनके पात्रों में मनोवैज्ञानिक गहराई या चिंतन से युक्त नैतिक द्वंद का समावेश नहीं है। ये पात्र यदि चिन्हों से उभार आकार ग्रहण

कर लेते हैं तब भी फिल्मी दुनिया के जाने पहचाने और प्रतिनिधि पात्रों की सतह से ऊपर नहीं उठ पाते। इन नाटकों की विषय वस्तु में भी कोई अन्तर्दृष्टि नहीं है। निस्संदेह मंटो के कला-कौशल से इनमें एक प्रकार की सहजता और सरलता उत्पन्न हो गयी है। लेकिन मनो्रंजक नाटकों का शिल्प और फ़ार्मूला बहुत तेजी से बदलता है। कहानी कमजोर पड़ जाती है और पात्र टाइप बन जाते हैं। फिर उनका स्थान नये फ़ार्मूले और टाइप ले लेते हैं।

'करवट' का पहला नाटक 'करवट' है। शरीफ़ों के मुहल्ले में एक वेश्या रहती है जिसके यहाँ शराबी लोग शराब पीकर हल्ला-गुल्ला करते हैं। मुहल्ले के सिर्फ एक व्यक्ति को उस वेश्या से सहानुभूति है वह उसे अपने घर अपनी पत्नी और बेटी के साथ खाना खाने की दावत तक देता है। वेश्या उसके साथ बहुत अपमान-जनक व्यवहार करती है, लेकिन यह शरीफ़ आदमी अपना अपमान भी सहन कर लेता है। वह समझता है कि मनुष्य में हर समय सुधार हो सकता है। इसलिए कि उसकी सात्विक वृत्ति कभी नष्ट नहीं होती। भयानकं से भयानक अपराधी के हृदय में भी किसी कोने में प्रकाश का एक कण विद्यमान होता है जिसे यदि छेड़ा जाये तो वह उसके स्याह दिल को आलोकित करने का कारण बन सकता है।

अंततः वेश्या पर उसके सद्व्यवहार का प्रभाव पड़ता है और वह अपने धंधे से विमुख हो जाती है। अब यह सदाशय व्यक्ति उसका हाथ अपने हाथ में ले लेता है और स्वयं को उसके प्रेमी के रूप में प्रस्तुत करता है जैसे कि उसकी सज्जनता मात्र एक ढोंग थी और आदर्शवाद एक छल। व्यक्ति जैसा दिखाई देता था, वास्तव में वैसा नहीं था। वेश्या क्रोध, दुःख और निराशा की स्थिति में फिर से अपना धंधा शुरू कर देती है।

यह नाटक नैतिक अंतर्विरोध को अभिव्यक्ति देता है। और विडम्बना (Irony) इस अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त रचनात्मक औज़ार है। लेकिन इस नाटक में मंटो ने ट्रेजडी या कॉमेडी किसी रूप में व्यंग्य का प्रयोग नहीं किया है। इसलिए न तो उसमें कॉमेडी की विशेषता पैदा हो पाती है जों कि उत्तेजनाओं के शिकार यहाँ तक कि पत्नी और वेश्या के बीच शटल कॉक की तरह नाचने वाले पति के तमाशे से पैदा हो सकती थी और न वह ट्रेजडी जो एक आदर्शवादी व्यक्ति के वेश्या-उद्धार करते-करते स्वयं उसका शिकार बन जाने का नतीजा होती है। तकनीकी कमज़ोरी के कारण नाटक सतहियत का शिकार हो गया है। अन्यथा नाटक के लिए यह विचार बुरा नहीं था कि आदर्शवाद को पापकर्म से जुड़े व्यक्ति में रोशनी दिखाई देती है, लेकिन उसे एक सज्जन व्यक्ति में छुपे हुए अवगुण नहीं दिखाई देते।

'नीली रगें' नाटक में भ्रांति और विस्मृति का हस्तक्षेप है। इसके बावजूद यह काव्य और संगीत-नाटक का रोचक उदाहरण है। सईद शायर है और कड़कड़ाती सर्दी में एक सुंदर अजनबी स्त्री के गोरे ठंडे हाथों की अनुभूति उसकी रग-रग में समायी हुई है। गोरे-गोरे ठंडे हाथ और उन पर फैली हुई नीली रगें, जैसे बर्फ़ में नीलम की लकीरें .... उन नीली रगों में कहीं-कहीं हाँफती हुई बुलबुल के सीने की-सी फड़फड़ाहट।

सईद की कल्पना यथार्थ बन जाती है और यह स्त्री सुरैया के रूप में उसके कमरे में आ जाती है। सईद और सुरैया की बातें बहुत रोचक हैं। वास्तविक भी हैं और वायवीय भी।

नाटक में शायर की कल्पना एक सुंदर स्त्री की कल्पना के साथ खूब खिलवाड़ करती है। संगीत और शायरी का भी अद्‌भुत सामंजस्य है। संवादों में काव्यात्मकता और राग-तत्व का समावेश है। साथ ही साथ हास्य का कोमल स्पर्श भी है।

'इंतिज़ार' और 'इंतिज़ार का दूसरा रुख' दो नाटक हैं। पहले नाटक में एक व्यक्ति प्रेमिका की प्रतीक्षा कर रहा है। प्रतीक्षा की पीड़ा, भावनाओं का आवेग, प्रेमिका के आने या नहीं आने के असमंजस को प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्ति दी गयी है। प्रतीक्षा के मनोवैज्ञानिक प्रभाव को दर्शाने के लिए मंटो इस व्यक्ति के तार्किक अस्तित्व से काम निकालता है। तार्किक अस्तित्व प्रेमिका के आगमन की हर संभावना को नकारता है लेकिन भावनाओं के आवेग में बहता हुआ यह व्यक्ति पूरी तरह आश्वस्त है कि प्रेमिका अवश्य आयेगी। अखबार वाले और एक मित्र के असमय आ जाने से उसकी विकलता और अधिक बढ़ जाती है। अंत में प्रतीक्षारत व्यक्ति बेहोश पड़ा है। मिलने आया हुआ मित्र डॉक्टर को बुलाने जाता है। प्रेमिका का आगमन होता है, देखती है कि हज़रत मज़े से सो रहे हैं और लौट जाती है।

'इंतिज़ार का दूसरा रुख़' में बिल्कीस को आने में विलम्ब क्यों होता है, इसका दूसरा पक्ष देखा गया है। जाहिर है कि इस नाटक में पात्रों की अधिकता है। बिल्क़ीस के माता-पिता, उसका भाई, उसकी छोटी बहन सब के सब उसे कोई न कोई काम बताकर जाने से रोक लेते हैं। 'इंतिजार' में आंतरिक तथा 'इंतज़ार का दूसरा रुख़' में बाह्य स्थितियों को उभारा गया है। बिल्क़ीस के आगमन में जैसे कि समूचा घर बाधा बना हुआ था। इस प्रकार के नाटकों में अड़चन डालने वाली घटनाएं इतनी सोची-समझी होती हैं कि कलात्मक स्वाभाविकता को भारी क्षति पहुँचती है। यह नाटक इस दोष से बच गया है, जो कि मंटो के कला-कौशल का प्रमाण है।

'टेढ़ी लकीर' नाटक मंटो की इसी शीर्षक की कहानी पर आधारित है। नाटक कहानी से अधिक सफल है। यह एक ऐसे युवक की कहानी है जो हर बात में दूसरों से अलग रास्ता अपनाता है। उसके मित्रों को बड़ा आश्चर्य होता है जब वह विवाह के लिए तैयार हो जाता है। क्योंकि विवाह और उसकी प्रथाओं का वह हमेशा उपहास किया करता था। बहरहाल उसका विधिवत विवाह संपन्न होता है जिस पर उसके मित्र खूब हँसते हैं। जावेद उनके पास आकर अपने एक मित्र से सौ रुपये मांगता है जो कि उसने उधार दिये थे। कारण यह बताता है कि वह लड़की को अग़वा करना चाहता है। और वह अपनी पत्नी को अग़वा कर जाता है। लड़की वाले उस दिन से परेशान थे कि लड़की किसके साथ भाग गयी और जावेद को क्या जवाब देंगे ? अब उसका पत्र पढ़कर स्तब्ध रह जाते हैं कि निकाह हो गया था। पत्नी उसकी जब चाहता ले जा सकता था। लेकिन अब उसे क्या कहा जाये–टेढ़ी लकीर ही था।

मेरी दृष्टि में मंटो के केवल दो नाटक साहित्य में उच्च स्थान पा सकते हैं। उनमें से एक तो स्वयं उसकी कहानी 'हतक' का नाट्य रूपांतरण है और दूसरा 'जर्नलिस्ट'।

'हतक' और 'जर्नलिस्ट' की सफलता का कारण रूप का वह अनुशासन है जिसका अवसर या तो अन्य मनोरंजक नाटकों में मंटो को नहीं मिला या वह स्वयं इस अनुशासन का निर्वाह करने में असमर्थ रहा। अतएव वह अन्य नाटकों में भावुकता, रोमानियत, अतिनाटकीयता और मंचीय आडम्बरों के दोष से बच नहीं सका। मंटो के पास कॉमडी का रचना-कौशल था। उसके व्यंग्य-बोध में तीव्रता थी और उसे संवाद-लेखन पर असाधारण अधिकार था। लेकिन ये खूबियाँ उसकी कमज़ोरियां भी साबित हुईं। वह केवल संवादों के बल पर नाटक लिख सकता था। अतएव हास्यप्रधान चरित्रों और मनोरंजक स्थितियों की सृष्टि की ओर उसने अपेक्षित ध्यान नहीं दिया। क्योंकि नाटक में हास्यरस की सृष्टि सरल नहीं होती बल्कि हास्यप्रद स्थितियों को उभारने में बहुत समय और परिश्रम की आवश्यकता होती है। किसी कला के अनुशासन को स्वीकार करने का अर्थ ही यह है कि भावुकता, रोमानियत और अतिनाटकीयता आदि सोच की कमज़ोरियों को, जो कि कलात्मक अपरिपक्वता का परिणाम होती हैं, अपने सर्जनात्मक मानस से दूर रखा जाये। 'हतक' और 'जर्नलिस्ट' में वही कलात्मक परिपक्वता दृष्टिगत होती है जो कि मंटो की कहानियों का गुण है। एक नाटक में ट्रैजेडी और दूसरे में कॉमेडी की संरचना विधमान है। दोनों ही नाटकों में कहानी का यथार्थवादी विकास, अनुभव की प्रामाणिकता और चरित्रों की मनोवैज्ञानिक गहराई तथा निजता की विद्यमानता

है जिसके कारण ये नाटक उच्च कोटि की कला का दर्जा पाते हैं। 'जर्नलिस्ट' में मंटो आह्लादकारी स्थितियों को उभारने में सफल हुआ है। इसके हास्य में स्वाभाविकता और संवादों में अनौपचारिकता है। 'हतक' में आम भाषा का व्यवहार किया गया है। सभी पात्र अपने वर्ग की भाषा में बोलते हैं। इसलिए मंटो ने उनसे वही बातें कराई हैं जो वे इन हालात में करते हैं। वास्तविकता यह है 'हतक' को यथार्थवादी चरित्र प्रदान करने में इसके संवादों की भूमिका है। पात्रों को नाटकीय प्रदर्शन करने की ज़रूरत ही महसूस नहीं होती।

निबंध

सौ के लगभग रेडियो-नाटकों के अतिरिक्त मंटो के यहाँ फ़िल्मी रेखाचित्रों और निबंधों की संख्या भी स्वयं उसके अनुसार सौ से कम नहीं। इससे स्पष्ट होता है कि मंटो न केवल तीव्र गति से लिखता था बल्कि अधिक मात्रा में भी लिखता था। बहुत कम ऐसी रचनाएं हैं जिन पर उसने पुनर्दृष्टि की हो और बहुत कम ऐसी कहानियाँ हैं जिन पर पुनः एक दृष्टि डालने की ज़रूरत महसूस होती हो। कहानी जैसी चीज़ को प्रायः वह एक ही बैठक में या एक ही दिन में लिख देता तो स्पष्ट है हल्के-फुल्के अख़बारी लेखों पर अतिश्रम करने का प्रश्न ही नहीं उठता। वे सब के सब लेखनी के प्रवाह में लिखे गये हैं।

मंटो को प्रकृति ने असीम सर्जनात्मक कल्पना प्रदान की थी। कहानियाँ ढली-ढलाई, बनी बनाई, पात्रों और घटना-स्थितियों समेत उस पर उतरती थीं और वह उन्हें बिना किसी आयास के काग़ज़ के पृष्ठों पर लिपिबद्ध करता जाता था। लेख लिखते समय मंटो को यह अंतःप्रेरणा नहीं हुई। स्पष्ट है कि निबंध का सम्बंध कल्पना की तुलना में विचार या ज्ञान से अधिक है। वस्तुगत स्थितियाँ, समस्याएं और भाव आँखों के सामने होते हैं। उन पर ज़रा अपने ढंग से सोचते जाइए और कभी व्यंग्य-विनोद, कभी रूपक एवं कथा, कभी सर्वज्ञता एवं सर्वदृष्टि और कभी अल्पज्ञता से काम लीजिए तो मन को गुदगुदाने वाला और क्षणिक आनंद प्रदान करने वाला अख़बारी लेख तैयार हो जायेगा।

मंटो न केवल यह कि यह पत्रकार था बल्कि एक पेशावर पत्रकार था। उसने अनेक पत्र-पत्रिकाओं में काम किया। बिना पारिश्रमिक के लिखना वह लेखनी का अपमान समझता था। उसे भाषा और अभिव्यक्ति पर इतना अधिकार था कि वह देखते ही देखते एक लेख लिख सकता था। हमें जहाँ तक लगता है, पत्रकारिता के कारण ही मंटो सामाजिक घटना-चक्र और गतिविधियों के दबाव में अधिक रहा

है। उसके आरंभिक लेखों में समाजवाद, मार्क्सवाद, लाल क्रांति, स्वाधीनता संग्राम, जलियांवाला बाग़ और असहयोग आंदोलन के प्रभाव लक्षित होते हैं। बाद में सांप्रदायिक राजनीति, दंगों, विभाजन, कश्मीर की लड़ाई, अमरीकी साम्राज्यवाद और महाजनी व्यवस्था, धार्मिक राज्य की कल्पना, राजनीति पर मौलवियों का प्रभुत्व, पर्दा प्रथा के प्रति उनकी संकीर्णता, नारी मुक्ति, साहित्य में ऐंद्रिकता एवं अश्लीलता की समस्याओं और समाज में वेश्याओं एवं अग़वा की गयी स्त्रियों की समस्याओं की ओर उसका ध्यान आकृष्ट हुआ।

मंटो के लेख पढ़ते हुए हमारे सामने एक ऐसे व्यक्ति की तस्वीर उभरती है जिसके पैरों में छाले हैं और जो आग की लपटों से घिरी दुनिया में चतुर्दिक् दौड़ रहा है। कहीं जाये सुरक्षा नहीं, कहीं शांति नहीं। एक गद्यकार को जो विश्राम की ठंडी छांव नसीब होती है, उसका दूर-दूर तक नाम-निशान नहीं है। ऐसा लगता है कि यथार्थ-चित्रण की चिलचिलाती धूप में मंटो को कभी रोमानियत, कोमल अनुभूतियों और मोहक सपनों की छतनार नसीब नहीं हुई। यह वास्तविकता है कि मंटो के यहाँ कलाकार एक पत्रकार की कोख से जनमा है। इस बात को यों भी कह सकते हैं कि मंटो अपने निर्माण काल में विविध प्रकार का लेखन करता रहा। अनुवाद किये, पत्रकारिता सम्बन्धी लेख लिखे, नाटक लिखे, फ़िल्मी कहानियाँ लिखीं ; लेकिन अतंतोगत्वा उसका उदय एक कहानीकार के रूप में हुआ। उसने पत्रकारिता और कला में पर्याप्त दूरी बनाये रखी। किसी भी स्थिति में उसने पत्रकारिता को कला पर हावी नहीं होने दिया। वह शुरू से ही अपनी कहानियों को लेकर बहुत गंभीर था। अपनी कहानियाँ की कलात्मक विशेषताओं, उनकी सामाजिक एवं-नैतिक अर्थवत्ता और मनोवैज्ञानिक गहराई को लेकर उसकी समझ बहुत गहरी थी; जैसा कि उन लेखों से प्रकट होता है जो उसने अपनी बदनाम कहानियों के पक्ष में लिखे हैं।

कहने का अभिप्राय यह है कि मंटो के लेखों के अध्ययन से यह बात सामने आती हे कि मंटो सामयिक एवं तात्कालिक महत्व की घटना-स्थितियों को लेखों में अभिव्यक्ति देता था और उसका सर्जनात्मक मन सीधे-सीधे उन दबावों से मुक्त रहता था। उसके सर्जनात्मक मन का यह अनुशासन प्रशंसनीय है कि उसने आरंभ से अंत तक अपनी रचनात्मक गतिविधियों को अपनी पत्रकारिता सम्बंधी गतिविधियों से अलग रखा।

'मंटो के मज़ामीन' उसके लेखों का पहला संग्रह है। इसमें 1942 ई. से पहले के लेख शामिल हैं। अनुमान किया जाता है कि इनमें से अधिकांश लेख स्वयं उसके संपादन में बम्बई से निकलने वाली पत्रिका 'मुसव्विर' में प्रकाशित हुए थे। अंतर्साक्ष्य से पता चलता है कि 'लोग अपने आपको मदहोश क्यों करते

हैं' शायद किसी रूसी लेख का भावानुवाद है। क्योंकि शराबों के नाम रूसी हैं। इसी तरह 'अगर' भी कहीं से लिया हुआ लगता है। यद्यपि इतिहास में 'अगर यूँ होता तो क्या होता और यूँ न होता तो क्या होता' ऐसा विषय नहीं हैं जिस पर मंटो जैसा नवीन उद्भावनाएं करने वाला व्यक्ति लेखनी न उठाता। लेख में भारतीय इतिहास से स्वाभाविक उदाहरण दिये गये हैं, लेकिन यूरोप के इतिहास से दिये गये उदाहरण इतने अनोखे और अल्पज्ञात हैं कि यह लेख ऐसे मस्तिष्क की उपज प्रतीत होता है जो यूरोप के इतिहास पर विद्वत्तापूर्ण अधिकार रखता हो।

'देहाती बोलियाँ' दो भागों में है और पंजाब के लोकगीतों से मंटो के गहरे जुड़ाव का अच्छा नमूना है। जिसे प्रायः आतंकप्रिय कथाकार समझा जाता है उसके व्यक्तित्व का यह पक्ष बड़ा मनोग्राही है कि उसे अपनी आंचलिक संस्कृति से कितना प्रेम था ? इन लेखों को देखकर अनुमान होता है कि यदि मंटो ने अपने लिए एक यथार्थपरक कथाकार की भूमिका न चुनी होती तो धरती पूजा का उदाहरण प्रस्तुत करने वाले एक आदर्शवादी महात्मा की भूमिका में स्वयं को ढालना उसके लिए इतना कठिन नहीं था।

"हिंदुस्तानी सन्अत-ए-फ़िल्मसाज़ी पर एक नज़र" एक विस्तृत निबंध है जिसका केवल अब ऐतिहासिक महत्व रह गया है। लेकिन अपने समय में यह निबंध फ़िल्म पर एक महत्त्वपूर्ण मीमांसा माना जाता था। अलबत्ता मंटो की बुनियादी शिकायत अब भी अपना वज़न रखती है कि फ़िल्म उद्योग पर अल्पबुद्धि धनवान लोगों का प्रभुत्व है। और वे नवयुवक जो फ़िल्मों का उपयोग आर्ट और आइडियल के लिए करना चाहते हैं, उनके मार्ग में अनेक बाधाएँ हैं। मंटो कहता है कि हमें ऐसी फिल्मों की ज़रूरत है जो मनोरंजन कराने के साथ-साथ मस्तिस्क को चिंतन की ओर प्रवृत्त करें। स्टार सिस्टम को वह पसंद नहीं करता और लाघव के महत्व पर बल देता है। सांकेतिकता को वह कला का गुण मानता है और इसीलिए देंवकी बोस और शांताराम की मुक्त कंठ से प्रशंसा करता है।

इस संग्रह में एक अन्य महत्त्वपूर्ण लेख भी है जो कि बरुआ की प्रसिद्ध फिल्म 'ज़िंदगी' पर एक विस्तृत समीक्षा है। इस समीक्षा में जो चीज़ सबसे पहले हमारा ध्यान आकर्षित करती है, वह विवेचन शैली है। भावों की आंच में तपी हुई शैली लेख में आलोचना और व्यंग्य की शक्ति को बढ़ा देती है। इस लेख में जीवन, साहित्य और नैतिकता की ऐसी समस्याओं पर विचार विमर्श किया गया है जिनका तत्कालीन उर्दू आलोचना में दूर-दूर तक कोई निशान नहीं था। मनोरंजक साहित्य, रोमानियत, भावुकता और विशेष रूप से जीवन के ताप से रहित कला मंटो की आलोचना का लक्ष्य रहे हैं। एक अर्थ में तो यह लेख आलोचना की आधुनिक और

अनौपचारिक शैली का प्रवर्तक है और आज भी पढ़ने योग्य है। 'तल्ख़, तुर्श और शीरीं' के दर्जन भर लेखों में रंगारंगी और विविधता है। 'दीवारों पर लिखना' लेख इस वाक्य से आरंभ होता है: "इस दीवार पर लिखना मना है।" बच्चों के हाथ में पेंसिल आते ही वे दीवारों पर लिखते हैं, जैसे कि दीवारों पर लिखना मनुष्य के स्वभाव का अंग है। मंटो दीवारों पर लिखी तहरीरों की विभिन्न क़िस्मों के ऐसे-ऐसे नमूने पेश करता है कि उसी के शब्दों, "ऐसी मुसव्वरी (चित्रकला) और शायरी को देखकर इन्सान नक़्श बादीवार (दीवार पर अंकित चिह्न) हो जाता है।'

'नाक की क़िस्में' में मंटो ने उर्दू शब्द-निर्माण के साथ खिलवाड़ की है। उदाहरण के लिए खतरनाक, शर्मनाक, ग़म नाक आदि। लेख रोचक बन पड़ा है। 'कुछ नामों के बारे में' लेख में मंटो ने बड़े मनोविनोद के साथ लेखक ओर शायरों के वास्तविक नाम और लेखकीय नाम से पैदा होने वाले भ्रम की चर्चा की है। सच्चाई यह है कि साहित्यकारों के लेखकीय नामों में एक ऐसा सम्मोहन होता है जो उनके व्यक्तित्व को आकर्षक बनाता है। मूल नाम पता चलने ही यह तिलिस्म टूट जाता है। अब कहाँ 'मीरा जी' का ठेठ हिंदीपन और कहाँ उनके मूल नाम सना उल्लाह की मौलवीयत। नून मीम राशिद को आप नज़्र मुहम्मद कहिए और विलायती केक लाहौर की नान खताई का मज़ा लीजिए। यही हाल नूर मुहम्मद का है। आप तख़ल्लुस से पुकारिए और देखते ही देखते एक चेचक ज़दा चेहरा बहज़ाद लखनवी की खुशरंग रूमानी तस्वीर में बदल जायेगा।

शायर को उसके वास्तविक ग़ैर शायराना नाम से पुकारने में एक कुटिलतापूर्ण आनंद की अनुभूति होती है, जो अपनी प्रकृति में मूर्तिभंजन की प्रसन्नता से भिन्न नहीं है। लेखकीय नाम का भ्रम पैदा करने ओर मूल नाम का भ्रम निवारण करने का यह काम खतरों से भरा हुआ है क्योंकि इसमें चेहरों को बेनक़ाब करने से प्राप्त होने वाली प्रसन्नता का लालच बना रहता है। मंटो की प्रतिभा ने तलवार की धार पर चलने के इस कठिन काम को सरल बना दिया है।

मंटो, ग़ालिब का प्रेमी था। मिर्ज़ा के व्यक्तित्व से उसकी स्वाभाविक अनुरूपता थी। 'मिर्ज़ा नौशा और चौदहवीं' में मंटो ने सबसे पहले शायर, डोमनी और कोतवाल के त्रिकोण पर एक ऐसी कहानी तैयार की जो बाद में फ़िल्म फ़ीचर और दूरदर्शन-सीरियल की बुनियाद ठहरी। 'आगरा में मिर्ज़ा नौशा की ज़िंदगी में मंटो ने राजा बलवान सिंह के साथ पतंगबाज़ी के प्रसंग में पतंगबाज़ी की शब्दावली का ठीक उसी प्रकार प्रयोग किया जिस प्रकार डिप्टी नज़ीर अहमद अपने उपन्यासों में मुहावरों का उपयोग करते थे। अर्थात् सूची बना कर।

'ऊपर, नीचे, दरमियान' में अठारह लेख हैं और चचा साम के नाम नौ पत्र

हैं। ये सब की सब रचनाएँ अख़बारी, सतही और फुसफुसी हैं। इन लेखों के व्यंग्य में भोथरापन और हास्य में फीकापन है। वर्णनशैली में गांभीर्य, प्रांजलता और नवीनता नहीं है। चचा साम के नाम पत्रों मे भी निरी पत्रकारिता है। हास्य में मंद स्मिति का, वर्णन में सांकेतिकता का और व्यंग्य में मनोविनोद का अभाव है।

'किरचें और किर्चियां' 'बातें', 'अपनी अपनी डफली', 'सवेरे जो कल आँख मेरी खुली' और 'देख कबीरा रोया' में मंटो ने छोटी-छोटी घटनाओं, जो आख़िरकार लतीफों का रूप ले लेती हैं, के माध्यम से सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थतियों पर व्यंग्य किया है। इनमें से अंतिम दो लेख बहुत अच्छे हैं। उनमें मंटो ने ऐसे लतीफों का आविष्कार किया है जो पत्रकारिता सम्बन्धी निरीक्षणों से अधिक अर्थपूर्ण हैं।

सांप्रदायिक दंगों पर मंटो ने 'एक अश्क आलूदा[1]' अपील, 'योम-ए-इस्तिक़लाल[2]' और महबूस औरतें[3], जैसे लेख लिखे। दिलचस्प बात यह है कि अगवा की गयी स्त्रियों पर बेदी ने अपनी प्रसिद्ध कहानी 'लाजवंती' लिखी जब कि मंटो सिर्फ़ लेख ही लिख पाया। सामाजिक घटनाएँ प्रभावित तो सभी कलाकारों को करती हैं लेकिन सबके यहाँ वे सर्जनात्मक अनुभव नहीं बनतीं।

'पर्दे की बातें' में मंटो ने उन लोगों का भंडाफोड़ किया है जो धर्म के नाम पर स्त्रियों को घर की चारदीवारी में क़ैद करना चाहते हैं। लेकिन मंटो फ़ैशनपरस्त वर्ग की स्त्रियों और उनके चोली घाट के ब्लाउज को भी पसंद की दृष्टि से नहीं देखता। खैर ये बातें तो समझ में आती हैं। लेकिन मंटो तो उन संस्थाओं को भी संदेह की दृष्टि से देखता है जिनकी स्थापना इस वर्ग की स्त्रियों के संरक्षण में नारी जाति की मुक्ति और उन्नति के उद्देश्य से की गयी है। कृश्नचंदर की ही भाँति मंटो भी नारी स्वतंत्रता का समर्थक है, लेकिन स्वतंत्र स्त्रियों को पसंद नहीं करता।

इसके अतिरिक्त मंटो ने ऐसे बहुत से लेख भी लिखे हैं जिनमें साहित्य और नग्नता, साहित्य और निषेध तथा आधुनिक युग की साहित्यिक अपेक्षाओं पर बहस की गयी है। 'सफ़ेद झूठ', 'अफ़सानानिगार और जिंसी मसायल', "कसौटी' और 'अदबे-जदीद' इनमें से विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये चिंतनपरक लेख हैं लेकिन इन पर बहस की यहाँ गुंजायश नहीं है। मंटो एक सुलझी हुई साहित्यिक चेतना का धनी था। आलोचना को शास्त्रीय छिद्रान्वेषण और अध्यापकीय पांडित्य से बाहर निकाल कर सीधे-सीधे साहित्यिक अनुभवों का साक्षी बनाने और उसे जीवंत संवाद का रूप देने में इन लेखों की बड़ी भूमिका रही। इसी प्रकार उसने अपनी दो कहानियों 'काली शलवार' और 'ठण्डा गोश्त' पर की गयी आपत्तियों के जवाब

में जो लेख लिखे उन्हें कहानी की व्यावहारिक आलोचना के उत्कृष्ट नमूने कहा जा सकता है। उन्हें पढ़कर आश्चर्य होता है कि जिन कहानियों की तात्त्विक व्याख्या करने में हमारे पेशेवर आलोचक अक्षम रहे हैं, उनकी मनोवैज्ञानिक और कलात्मक विशिष्टताओं को इन लेखों में सूक्ष्मता के साथ विश्लेषित किया गया है।

रेखाचित्र

मंटो उर्दू का सिद्धहस्त रेखाचित्रकार था। उसके 'गंजे फरिश्ते' और 'लाउडस्पीकर' दो रेखाचित्र संग्रह हैं। उनमें पत्रकारिता, साहित्य, फ़िल्म और रेडियो की दुनिया से जुड़े कुल बाईस व्यक्तित्वों पर रेखाचित्र हैं। हमारे सांस्कृतिक जीवन के इन क्षेत्रों में चौथे और पांचवें दशक में बड़ी सरगर्मियां थीं। इस दौर ने अनेक उच्चकोटि की प्रतिभाओं को जन्म दिया। मंटो के इन रेखाचित्रों में इन दो दशकों की आत्मा समाहित है। हम न केवल महान व्यक्तित्वों से परिचय प्राप्त करते है। बल्कि इन रेखाचित्रों में उस पूरे दौर की नब्ज़ को धड़कता हुआ महसूस कर सकते हैं। लाहौर, दिल्ली और बम्बई क्रमशः पत्रकारिता, रेडियो और फ़िल्म के केंद्र थे। और मंटो का सम्बंध इन तीनों शहरों और क्षेत्रों के साथ रहा। मंटो के पास मर्म और रहस्यों को उद्घाटित करने का जो कौशल था उसने इन रेखाचित्रों को एक सार्वभौमिक लोकप्रियता प्रदान कर दी है।

ये सभी रेखाचित्र बड़े रोचक हैं। घटनाओं और चरित्र चित्रण में कहीं पुनरावृत्ति का दोष नहीं है। यद्यपि एक ही क्षेत्र में कार्यरत लोगों में घटनाओं और अनुभवों की समानता दृष्टिगत होती है। सिर्फ़ दो-तीन रेखाचित्रों के घटना-क्रम में कुछ गुंजलक पैदा हो गयी है। और कथन में झोल आ गया है।

शेष सभी रेखाचित्रों में व्यवस्थित घटना-क्रम, शैली की नवीनता और सुगठित शिल्प की विद्यमानता है। रोचक बात यह है कि रेखाचित्र, रेखाचित्र ही रहते हैं। कहानी नहीं बनते। लेकिन फ़ार्म के स्तर पर इनमें कहानी के कलात्मक सौंदर्य का समावेश है।

शायरों में मीरा जी का रेखाचित्र सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि का उत्कृष्ट नमूना है। वास्तविकता यह है कि इस रेखाचित्र में मंटो ने मनोवैज्ञानिक अध्ययन का हक़ अदा कर दिया है। पूरा रेखाचित्र एक मनोविज्ञान-विशेषज्ञ की रचना प्रतीत होता है।

अख़्तर शीरानी के रेखाचित्र में मंटो ने अख्तर की रोमानी नज़्मों की प्रभावकारिता का ही अत्यंत मनोहारी वर्णन किया है। वह ज़माना आँखों के सामने घूम जाता है, जब अख़्तर शीरानी के नगमों से समूचा वातावरण मंत्रमुग्ध हो जाता था। अख्तर शीरानी की शराब नोशी का बयान एक जूनियर शराब नोश की ज़बान से अजब गुल खिलाता है।

पत्रकारों में बारी अलीग, चिराग़ हसन हसरत और दीवान सिंह मफ्तूं के रेखाचित्र अद्वितीय हैं। इन व्यक्तित्व को उनकी मानवीय दुर्बलताओं के साथ इस

प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि न तो उनके प्रति प्रेम भाव में कमी आती है, न उनका क़द कम होता है। बारी क्रांतिकारी विचारों के व्यक्ति भी थे और परले दर्जे के भीरू भी थे। मंटो ने इस विरोधाभास को व्यंग्य और ठठोल के साथ नहीं बल्कि गहन आत्मीय लगाव के साथ उभारा है। वास्तव में मंटो को मंटो बनाने में, उसे श्रेष्ठ साहित्य के अध्ययन की प्रेरणा देने में, उसे लेखन एवं अनुवाद की ओर प्रवृत्त करने में बारी साहब की बड़ी भूमिका रही है। अन्यथा मंटो कुछ भी बन सकता था। और उसके लिए मंटो बारी साहब के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता है।

फ़िल्मी कलाकारों में सबसे अच्छे रेखाचित्र परी चेहरा नसीम, अशोक कुमार और पारो देवी के हैं नूर जहां का रेखाचित्र भी रोचक है और इसमें स्वयं मंटो के जीवन से सम्बंधित अनेक रोचक जानकारियाँ मिलती हैं। श्याम के रेखाचित्र की मुमताज़ शीरीं कुछ ज़रूरत से ज़्यादा ही प्रशंसा कर बैठी हैं। मेरी दृष्टि में तो यह रेखाचित्र बहुत भावुकतापूर्ण है। इस्मत चुग़ताई का रेखाचित्र भी बहुत आश्वस्त नहीं करता। अलबत्ता आगा हश्र कश्मीरी पर मंटो का रेखाचित्र हश्र के व्यक्तित्व का जीता-जागता चित्र प्रस्तुत करता है। रेखाचित्र लिखने में मंटो की कार्यपद्धति कैसी रही है, इस बात को स्पष्ट करने के लिए मैं इसी रेखाचित्र की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत करना चाहूंगा।

'आग़ा हश्र से दो मुलाकातें' को संरचना, शिल्पगत सौंदर्य, हास्य एवं विनोदप्रियता और सूक्ष्म निरीक्षण की दृष्टि से एक उच्च कोटि का रेखाचित्र कहा जा सकता है।

यहाँ भी रफ़ीक़ ग़ज़नवी की तरह आग़ा हश्र से भेंट करने की उत्कंठा कैसे बढ़ती रही और भेंट के अवसर कैसे हाथ से निकलते रहे अर्थात् मनोवैज्ञानिक धरातल पर इच्छा, जिज्ञासा, अभाव और फिर इच्छापूर्ति की मनःस्थितियों के चित्रांकन में कलात्मकता निहित है। यद्यपि इन विवरणों को अनावश्यक समझकर अनदेखा भी किया जा सकता है, लेकिन मंटो ऐसा नहीं करता। मंटो द्वारा खींचे गये चित्रों का एक विशिष्ट गुण यह भी है कि इनमें सिर्फ़ वही व्यक्ति महत्त्वपूर्ण नहीं होता जो कि रेखाचित्र का विषय है, बल्कि स्वयं रेखाचित्र लिखने वाला भी महत्त्वपूर्ण होता है। हम लेखक के दृष्टिकोण से दूसरे व्यक्ति को देखते हैं। अतएव लेखक के मानसिक और भावनात्मक व्यवहार भी इन रेखाचित्रों में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

आग़ा हश्र के रेखाचित्र की विशेषता यह है कि इसमें सिर्फ़ दो मुलाक़ातों का जिक्र है, लेकिन आगा हश्र के व्यक्तित्व के तमाम पहलू इसमें समाहित हो गये हैं। दारोग़ा इब्राहीम जो आग़ा हश्र का भक्त रहा है और उन्हें जानता भी है, आग़ा

हश्र का गुणगान करता रहता है। उससे मंटो को हश्र के सम्बन्ध में जानकारी भी मिलती रहती है और उनसे मिलने की जिज्ञासा भी बढ़ती रहती है। आग़ा हश्र की ख्याति, उनका भाषा-ज्ञान, उर्दू के साथ हिंदी में उनकी गति, उनका धार्मिक दृष्टिकोण, उनके नाटकों की प्रसिद्धि—ये सारी चीजें मिलकर उनके व्यक्तित्व को बहुत प्रभावशाली बना देती हैं। मंटो के रेखाचित्र में यह प्रभाव और ताप लक्षित होती है। लेकिन मंटो, मंटो है। उसकी यथार्थपरक दृष्टि हर यथार्थ को उसके मूल रूप में देख लेती है, सबसे पहले तो मुलाक़ात का हाल देखिए—

"बाहर सेहन में कुर्सियों पर कुछ आदमी बैठे थे। एक कोने में तख़्त पर पंडित मुहसिन बैठे गुडगुड़ी पी रहे थे। सबसे पहले एक अजीब-ओ-ग़रीब आदमी मेरी निगाहों से टकराया। चीखते हुए लाल रंग की चमकदार साटन का लाचा, दो घोड़े की बोस्की की कालर वाली सफ़ेद कमीज़, कमर पर गहरे नीले रंग का फुंदनों वाला इज़ारबंद, बड़ी-बड़ी बेहंगम आँखें। मैंने सोचा कटरा घुनियां का कोई पीर होगा। लेकिन फौरन ही किसी ने उसे आग़ा साहब कहकर मुख़ातिब किया। मुझे धक्का-सा लगा।"

आगे चलकर मंटो कहता है:

"मैं कई दिनों तक इस मुलाकात पर गौर करता रहा। आग़ा साहब अजीब-ओ-गरीब हजार पहलू शख्सियत के मालिक थे। मैंने उनके चंद नाटक पढ़े हैं जो गलतियों से भरे हुए थे और निहायत ही रद्दी काग़ज पर छपे हुए थे। जहाँ-जहाँ कॉमेडी आयी थी, वहाँ फक्कड़पन मिलता था। ड्रामाई मुकामों पर संवाद बहुत ज़ोरदार था। बाज़ शॉर बाज़ारू थे, बाज़ निहायत लतीफ़। बात यह है कि उन नाटकों का मौजूं तवायफ़ था, जिनमें आगा साहब ने उसके वजूद को सोसायटी के हक़ में ज़हर साबित किया था। .... और आग़ा साहब उम्र के उस आख़िरी हिस्से में शराब छोड़कर एक तवायफ़ से बहुत ही पुरजोश क़िस्म का इश्क़ फ़र्मा रहे थे।"

आग़ा साहब पर दूसरे लोगों ने भी रेखाचित्र लिखे हैं। लगता है वे एक अतिमानव की चर्चा कर रहे हैं। आग़ा हश्र बहुत अधिक शराब भी पीते थे, मन के स्वच्छ थे, प्रेमी हृदय भी थे, इस्लाम धर्म में दृढ़ आस्था भी रखते थे, गंदी गालियां बकने में बादशाह भी थे और अपने समय के साक्षी भी थे। मंटो के रेखाचित्र की विशेषता यह है कि ये सभी अंतर्विरोधी गुण अतिमानव के चित्र में रंग नहीं भरते बल्कि उनके व्यक्तित्व को उनके कद के अनुरूप आकार देते हैं। मंटो के रेखाचित्र में एक श्रद्धालु का भक्ति-भाव नहीं है, बल्कि एक यथार्थवादी व्यक्ति का सहज प्रेम-भाव है।

3

कहानियाँ

मंटो को कहानी कहने का गुर आता था। उसकी कहानी अपने सुगठित शिल्प से तुरंत पहचानी जाती है। कहानी का आरंभ, मध्य और अंत होता है। एक सुस्पष्ट कथन-भंगिमा और शब्द लाघव उसके विशिष्ट गुण हैं। अप्रत्याशित और विस्मयकारी परिणाम की तकनीक मंटो के कथाकार के स्वभाव में थी। मानवीय स्वभाव को आश्चर्य में डाल देने वाले रूपों के वर्णन में उसने इस तकनीक से बहुत काम लिया है। उसकी कहानियों में ज़िज्ञासा, रहस्योद्घाटन और विस्मय के तत्त्वों का समावेश है। निस्संदेह उसकी कहानियाँ चौंकाती और धक्का पहुँचाती है लेकिन वे एक अर्थ गर्भित यथार्थ का उद्घाटन करती हैं और फिर इस यथार्थ का सम्बंध मानवीय स्वभाव के अनदेखे पक्षों विशेष रूप से देहवादी और मनोवैज्ञानिक वृत्तियों से स्थापित करती हैं।

मंटो के कहानी-लेखन का आरंभ राजनीतिक कहानियों से होता है। उसकी पहली कहानी, जो उसके पहले संग्रह 'शरारे' में संगृहीत है, अमृतसर में अंग्रेज़ों की गोली से घायल एक नौजवान पर है। ज़ाहिर है यह कहानी अनगढ़ और कमज़ोर है। 'खूनी थूक' में घटना-संयोजन अच्छा है और कथन-भंगिमा पर भी अधिकार है। एक गोरा एक क्षयरोग ग्रस्त कुली के सीने पर घूँसा मारता है। कुली का मुँह खून से भर जाता है जिसे वह गोरे के मुँह पर थूक देता है। 'दीवाना शायर' जलियाँवाला बाग़ पर है और अत्यंत मार्मिक कहानी है।

इन आरंभिक कहानियों के अलावा राजनीतिक विषयों पर 'नया कानून', '1919 की एक बात', 'सुराज के लिए' और 'यज़ीद' मंटो की अपेक्षाकृत अधिक सशक्त कहानियाँ हैं। 'यज़ीद' अच्छे ढंग से लिखी गयी है। लेकिन संतोषप्रद प्रतीत नहीं होती। शत्रु ने नहरों का पानी बंद कर दिया है। करीम दाद बेटे का नाम यज़ीद रखता है। लोग हैरान होते हैं और पूछते हैं कि यह क्या हरकत है ? तो वह कहता है कि "ज़रूरी नहीं कि यह भी वही यज़ीद हो। उसने दरिया का पानी बंद किया था, यह खोलेगा।" बात कुछ बनती नहीं।

'नया कानून' मंटो की बहुत ही प्रसिद्ध कहानी है। यह विचार, कि नया कानून आते ही हिंदुस्तान आज़ाद होगा और अंग्रेज़ों से मुक्ति मिलेगी, मंगू कोचवान के

मन पर छा जाता है। मंगू एक सीधा-सादा, मूर्ख और अनपढ़ आदमी है जो बातों का धनी है। यह कोचवान बहुत जल्दबाज़ है, जो बात उसके मन में आयी तो उस पर पागलपन सवार हो जाता है। मंटो ने उसके इस चारित्रिक पहलू को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उभारा है। एक अप्रैल को मंगू कोचवान उसी तरह उठता है जिस तरह ईद के दिन बच्चे जागते हैं। वह दुनिया को बदली हुई, एक नया चोला पहले देखना चाहता है। लेकिन दुनिया उसे वही पुरानी लगती है। नया कानून आ गया, फिर भी सब कुछ वैसा ही था और कुछ भी नहीं बदला था। इस निराशा की स्थिति में उसे वही गोरा मिलता है जिससे उसकी ठनी हुई है। फिर झगड़ा होता है। मंगू कोचवान गोरे को मारता है, जेल भेज दिया जाता है। मंगू कोचवान का चरित्र कहानी की जान है। एक आम और मामूली आदमी को इतने रोचक रूप में प्रस्तुत करना मंटो के चरित्र-चित्रण का विशिष्ट गुण है।

'1919 की एक बात' बहुत ही अच्छी कहानी है। मंटो के लिए यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण थी कि फ्रांस की क्रांति में पहली गोली एक धंधा करने वाली स्त्री को लगी थी और अमृतसर में गोरों की गोली से मरने वाला एक वेश्या का लड़का था। उसकी दो बहनें शहर की जानी-मानी वेश्याएँ थीं। भाई के शहीद होने के दो दिन बाद उन्हें गोरों ने अपने सामने नाचने पर मजबूर किया। कहानी का यही वह रोचक मोड़ है जहाँ इस घटना का वाचक पात्र एक रेल यात्री देशभक्ति की भावना से आपूरित होकर बताता है कि दोनों बहनों ने निर्वसन होकर अंग्रेज़ों के मुंह पर थूकना चाहा और अंग्रेज़ों ने दोनों को गोली से दाग़ दिया। जब प्रथम पुरुष कहता है कि यह परिणाम तो मनगढ़ंत लगता है तो यात्री स्टेशन पर उतरते हुए बड़ी कटुता से कहता है, "हाँ, उन्होंने अपने शहीद भाई के नाम पर बट्टा लगाया!" और चला जाता है। एक यथार्थवादी कलाकार के रूप में मंटो राजनीतिक आदर्शवाद के गुब्बारों में छेद करता है और बताता है कि इतिहास की गति हमारी इच्छाओं के अनुरूप नहीं होती।

मंटो के पास जलसों, हड़तालों, हंगामों और भगदड़ के चित्रांकन की अद्‌भुत क्षमता थी। ऊपर उद्धृत कहानी के अलावा 'सुराज के लिए' इसका अच्छा उदाहरण है जो मंटो की चंद बेहतरीन कहानियों में से एक है। अमृतसर में असहयोग आंदोलन का इतना प्रभावशाली चित्रण अन्यत्र नहीं मिलेगा। कहानी में जलसों और जुलूसों का ऐसा जीवंत चित्रण है कि लगता है कि हम उनमें शामिल हैं। कहानी की विषय–वस्तु मंटो के इस दृष्टिकोण पर आधारित है कि कोई भी राजनीतिक आंदोलन हो, नैतिक व्यवस्था हो, धर्म या समाज सेवा का मंच या आश्रम हो; यदि वह मनुष्य के नैसर्गिक भावों और सम्बंधों पर प्रतिबंध लगाता है तो वह अंततः जीवन

में विष ही घोलता है। यह कहानी असाधारण क्लासिकी अनुशासन से, व्यंग्य का संयम बरतते हुए और चरित्रों को स्वाभाविक विकास का अवसर देते हुए लिखी गई है। यह निर्णय स्वयं गुलाम अली का है कि वह और निगार स्वाधीनता प्राप्ति तक संतान को जन्म नहीं देंगे। यह बाबाजी का निर्णय नहीं है, जिनके चरित्र का महात्मा जी से सादृश्य दिखाने के बावजूद मंटो उन्हें एक अलग पहचान देने में सफल हुआ है। गुलाम अली के माध्यम से मंटो ने एक ओजस्वी युवा नेता का चित्र उपस्थित किया है। उसके युवा व्यक्तित्व में ऐसी दीप्ति ... और स्फूर्ति है कि गर्म निराध के रबर के साधन के विरुद्ध उसकी नफ़रत और वितृण स्वाभाविक मालूम होती है। ऐसा लगता है कि महान प्रवृति सभ्यता की कृतिमता से युद्धरत है।

रूमानी प्रेम के विषय पर मंटो ने बहुत सी कहानियाँ लिखी हैं। इन कहानियों की प्रेरणा वह आवारा चरवाही लड़की है जिससे कि मंटो का पहला-पहला प्रेम हुआ था। लेकिन ये असफल कहानियाँ हैं, क्योंकि प्रकृति से मंटो रूमानपसंद नहीं था। इसके विपरीत वह यथार्थवादी था। अतः उसकी वे कहानियाँ अच्छी बन पड़ीं जो रूमानी प्रेम की पारंपरिक धारणा को तोड़ती हैं, जैसे 'इश्क-ए-हक़ीक़ी', 'दो क़ौमें', 'इश्किया कहानी', 'जाओ हनीफ़ जाओ', 'सौदा बेचने वाली' 'बदसूरती' और 'पेशावर से लाहौर तक'।

'इश्क-ए-हक़ीक़ी' में कहानी को इस रूप में गढ़ा गया है कि लड़का और लड़की दूर-दूर रहें और एक दूसरे के समीप आने न पायें। अतः लड़का और लड़की की पहली भेंट सिनेमा के अंधेरे में होती है। लड़का अपने समीप बैठी हुई लड़की को कनखियों से देखता है। और उसके सौंदर्य पर मुग्ध हो जाता है। वह उसका पीछा करता है और लड़की अपने मकान की खिड़की से उसे अपनी झलक दिखाती है। संदेश आते जाते हैं। अंततः लड़की उसके साथ भाग जाने पर तैयार हो जाती है दोनों भागकर एक शहर में जाते हैं। होटल में कमरा किराये पर लेते हैं। लड़का लड़की के चेहरे से नक़ाब उठाता है। उसका सुंदर चेहरा हाथ में लेकर ऊपर के होंट के तिल पर अपना चुम्बन अंकित कर देता है। लड़की न-न करती है। उसके होंट खुलते हैं। दाँतों में गोश्त ख़ोरा है, मसूढ़े गहरे नीले रंग के हैं। दुर्गंध का भबका लड़के की नाक में घुसता है। उसे एक धक्का-सा लगता है। 'अभी आया' कहकर वह बाहर जाता है और गायब हो जाता है।

यहाँ रूमानी प्रेम का भाव देह के धरातल से ऊपर नहीं उठ सका है। प्रेम-भाव की अभिव्यक्ति में मंटो बहुत सच्चाई और शालीनता से काम लेता है। वह कहीं यह महसूस नहीं होने देता कि यह भाव मात्र एक क्षणिक लगाव से अधिक विश्वसनीय नहीं है। भाव स्वयं में बहुत विशाल होता है लेकिन बताशे की भाँति बैठ जाता है।

ध्यान रहे कि मंटो अपनी कहानियों में किसी सामान्यीकरण की ओर नहीं बढ़ता। ऊपर उद्धृत कहानी में यदि दांत मोतियों की भाँति होते तो कोई समस्या ही नहीं थी। जाहिर है, फिर मंटो कहानी भी नहीं लिखता जैसे कि उसने अनेक घटना-स्थितियों को अपनी कहानी का विषय नहीं बनाया। कहानी उसी विषय पर लिखी जाती है जिसके माध्यम से जीवन के अनदेखे पक्षों को उद्‌घाटित किया जा सके।

अब देखिये उपर्युक्त कहानी से यह नतीजा भी नहीं निकाला जा सकता कि जहाँ सुंदरता होगी वहाँ प्रेम का निर्वाह हो जायेगा। मंटो की एक कहानी है 'बदसूरती'। दो बहनें हैं। हामिदा कुरूप है और साजिदा रूपवती। हामिदा की शादी के कोई पैग़ाम नहीं आते और साजिदा का हामिद से विवाह हो जाता है। विवाह के वर्षों बाद एक रात हामिद गलती से हामिदा के पलंग पर चला जाता है। दूसरे दिन वह अपनी साजिदा को तलाक देता है और हामिदा से निकाह करता है। वह सिर्फ़ इतना कहता है, 'खूबसूरती में खुलूस होना नामुमकिन है बदसूरती हमेशा पुरखुलूस होती है।'

सुंदरता आत्मकेंद्रित और अहंकारी होती है। अपने अहं की कारा में बंदी। मनोवैज्ञानिक तनावों और द्वंद्वों से ग्रस्त आत्मा रूपी पक्षी हर्षोन्माद के उन्मुक्त आकाश में उड़ान भरने से वंचित रह जाता है। संसार में एक नहीं करोड़ों जोड़े बनते हैं। उन सबके संतोष और निबाह का आधार सुंदरता नहीं है, अपितु देह की वह सौम्यता है जो आत्मा को व्यक्तिवाद की कारा से मुक्ति प्रदान करती है।

मंटो यह भी बताता है कि कितनी बार व्यक्ति की सशक्त मनोवृत्तियों अर्थात्, तीव्र नैतिक और धार्मिक आचरणों के सामने भावुकता-पूर्ण प्रेम इस प्रकार काल कवलित हो जाता है जैसे फूले हुए गुब्बारे में से हवा निकाल दी जाये। 'दो कौमें' एक रोचक कहानी है। बड़े मनोयोग के साथ लिखी गयी है। मुख्तार और शारदा एक दूसरे से प्रेम करने लगते हैं। बल्कि एक ही छलाँग में बहुत-सी मंज़िलें तय कर जाते हैं। 'बेख़तर कूद पड़ा आतिश-ए-नमरूद में इश्क' जैसी स्थिति पैदा हो जाती है यों समझिये कि दोनों पति पत्नी बन गये हैं। अब विवाह की रीति संपन्न होना शेष है। इसमें भी कोई कठिनाई नहीं होती। मुख्तार के पिता अनुमति दे देते हैं। लेकिन शारदा पूछती है, 'हमारी शादी कैसे हो सकती है ?' मुख्तार मुस्कुरा कर कहता है, "इसमें मुश्किल ही क्या है ? तुम मुसलमान हो जाना।" शारदा चौंक जाती है। वह कहती है, "तुम हिंदू हो जाओ।" मुख़्तार आश्चर्य के साथ कहता है, "मैं हिंदू कैसे हो सकता हूँ ? और फिर भला हिंदू मज़हब भी कोई मज़हब है ! इस्लाम की तो क्या बात है ?" शारदा घृणा के साथ कहती है, "जाओ—चले

जाओ। हमारा हिंदू मज़हब बहुत बुरा है। तुम मुसलमान बहुत अच्छे हो।" और मुख़्तार अपना इस्लाम सीने से लगाये वहाँ से चला जाता है।

'जाओ, हनीफ़ जाओ' में भी हनीफ़ चला जाता है। यहाँ धर्म नहीं बल्कि नैतिक द्वेष रास्ते का पत्थर है। सामान्य धारणा तो यही है कि प्रेम की उद्दाम तरंगों के सामने सभी प्रकार के भेदभाव और द्वेष तिनकों की भाँति बह जाते हैं। लेकिन मंटो का यथार्थवादी मन इस धारणा को झुठलाये बिना तस्वीर के दूसरे पहलू को प्रस्तुत करता है। कहानी का आरंभ मित्रों की बातचीत से होता है जिसमें हर व्यक्ति अपनी जाति का धर्म योद्धा होने का दावा करता है और युद्ध में उतरने के लिए व्यग्र है। हनीफ़ उदास बैठा है क्योंकि अपनी नैतिक भीरुता के कारण वह प्रेम के समर में पराजित हो चुका है और उस लड़की को बचा न सका जिससे प्रेम करता था। यह लड़की उसे बटौत में मिली थी, जहाँ लड़की की बहन के क्षय रोग का उपचार हो रहा था। उसका बहनोई कुंदनलाल पाप की साक्षात प्रतिमूर्ति था। जिस रात लड़की की बहन का निधन होता है, उसी रात वह लड़की के साथ बलात्कार करता है। यह लड़की रो-रो कर हनीफ़ से कहती है, "जाओ, हनीफ़ जाओ, अब मैं किसी काम की नहीं रही।" हनीफ़ चला जाता है और जीवन भर लज्जित रहता है क्योंकि उसने उस सुंदर भोली लड़की को छोड़ दिया था, जिससे वह प्रेम करने लगा था। खुद को एक मोटी गाली देकर हनीफ़ कहता है, " कमज़ोरी .... मर्द अमूमन ऐसे मामलों में बड़ा कमज़ोर होता है .... लानत है उस पर।"

कहानी का रोचक पहलू यह है कि हनीफ के लिए जो कि सभी पुरुषों की तरह पुरुषत्व के अहं का शिकार है, चुनाव करना जितना कठिन था उतना ही सुमित्रा के जीवन का दुःख मर्मांतक है। इसका अर्थ यह नहीं कि उसकी प्रेम भावना दुर्बल थी बल्कि व्यक्ति के मार्ग में नैतिक और मनोवैज्ञानिक निषेधों की ऐसी दीवारें खड़ी हो जाती हैं कि उसे पराजय स्वीकार करनी पड़ती है और जीवन भर ग्लानि अनुभव करता है।

मंटो यह भी देखता है कि प्रेम की भावना का पात्र के व्यक्तित्व पर कैसा प्रभाव पड़ता है। 'सौदा बेचने वाली' में दो मित्र हैं–सुहेल और जमीला। दो बहने हैं–सलमा और जमीला। सलमा की शक्ल सूरत सीधी-सादी थी और जमीला की मुखकृति बहुत चित्ताकर्षक। जमील के मन में जमीला के प्रति गहरी आसक्ति थी, किंतु समस्या यह थी कि जमीला की बड़ी बहन उसे प्रेम की दृष्टि से देखती थी। बहरहाल एक दिन जमील जमीला को ले उड़ा और अपने मित्र सुहेल के यहाँ रावलपिंडी छोड़ आया। और यह जानने के लिए वापस लौटा कि जमीमा के भागने पर उसके परिवार जनों पर क्या प्रतिक्रिया होती है ? ज़ाहिर है वे लोग

उस पर संदेह नहीं करेंगे। और जब रावलपिंडी लौटकर आया तो जमीला सुहेल की हो चुकी थी। जब जमील ने उसकी बड़ी बहन सलमा से विवाह कर लिया। दोनों बहुत प्रसन्न थे। गर्मियों में मरी गये तो वहाँ उन्होंने देखा कि जमीला के मुख की स्निग्धता जाती रही थी और वह भौंडा-सा मेकअप किये थी। पिंडी पाइंट पर यों चल फिर रही थी जैसे उसे कोई सौदा बेचना हो।

यह कहानी बहुत अच्छे ढंग से लिखी गयी है। मानसिक परिपक्वता के अभाव में चंचलता और सौंदर्य अपना मूल्य खो देते हैं। यह मानसिक परिपक्वता सलमा में है और जमील उससे विवाह करके धन्य हो गया। जमीला में दिखावा ही दिखावा है। चरित्र में दृढ़ता नहीं है। स्वार्थपरता, ढुलमुलपन और चतुराई के तहत पहले वह अपनी बहन को फिर जमील को, फिर सुहेल को धोखा देती है। और परिणामतः उसे देह व्यापार का मार्ग अपनाना पड़ता है।

'पेशावर से लाहौर तक' में जावेद एक यात्रा के दौरान ज़नाना डिब्बे में एक ऐसी सुंदर लड़की को देखता है और उस पर आसक्त हो जाता है। हर स्टेशन पर लड़की उसे छोटे-मोटे काम बताती है और वह बखुशी करता है। उसने निश्चय कर लिया है कि वह उस लड़की का पता लगायेगा और उसी से विवाह करेगा। यद्यपि उसे रावलपिंडी उतरना था लेकिन उस लड़की का पीछा करता हुआ लाहौर पहुँच जाता है। लाहौर स्टेशन पर वह उसे अपने साथ तांगे पर बैठा लेता है और पूछता है, कहाँ जाना है ? लड़की कहती है, "हीरामंडी ! मेरा मकान देख लें। आज रात मेरा मुजरा सुनने ज़रूर आइयेगा।"

लड़की का आकर्षण मन में कैसी उमंगे जमा देता है, कैसे-कैसे सपने दिखाता है और दृढ संकल्पों को जन्म देता है ! कल्पना कीजिए कि यह संभ्रांत परिवार की लड़की होती तो कोई अवरोध नहीं था और वह उस लड़की को पाने के लिए ज़माने से भिड़ जाता। लेकिन एक ही शब्द 'हीरामंडी' ने उसकी रागात्मक भावनाओं के ज्वार को शांत कर दिया। लड़का बस पकड़ कर सीधा रावलपिंडी रवाना हो जाता है। मानो कि प्रेम की भावनाएं हवा के गुब्बारे की भाँति हैं। इससे अधिक उनका कोई महत्व नहीं।

वेश्या पर मंटो ने कुछ ऐसी कहानियाँ लिखी हैं जिनकी मिसाल मिलना मुश्किल है। 'काली शलवार', 'पहचान', 'हतक', 'दस रुपये', 'जानकी', 'बर्मी लड़की', 'फोभा... बाई', 'शांति', 'शारदा', 'भमी', 'सिराज', 'सौ कैंडिल पावर का बल्ब' और 'सरकंडों के पीछे' इस विषय पर उसकी प्रतिनिधि कहानियाँ हैं।

प्रायः यह कहा जाता है कि मंटो की वेश्या में स्त्री और स्त्री में माँ का रूप मिलता है। यह बात ठीक है। लेकिन सब कहानियों के संदर्भ में नहीं। उदाहरणार्थ उपर्युक्त कहानियों में से पहली पांच कहानियों में मंटो वेश्या में स्त्री को देखता

है, लेकिन निश्चित रूप से उस के माँ के रूप को नहीं। माँ का रूप 'जानकी', 'बर्मी लड़की', 'फोभा बाई' और 'ममी' में मिलता है। लेकिन हर रूप की अलग विशिष्टता है। 'शांति' और सिराज' में आहत स्त्रीत्व का रूप है। ' सौ कैंडिल पावर का बल्ब' और 'सरकंडों' के केंद्र में हैं तो वेश्या के चरित्र, लेकिन इन कहानियों की संवेदना हमारे मन में भावनात्मक कम्पन पैदा कर देती है ! ऐसा कम्पन, जिसकी जो अंधेरे और रहस्य भरे जंगलों की हवाओं से पैदा होता है।

वेश्या के चित्रांकन में मंटो के यथार्थ चित्रण का चरम रूप देखने को मिलता है। 'काली शलवार', 'पहचान', 'हतक', 'खुशिया' और 'दस रुपये' को पढ़कर आश्चर्य होता है कि अपनी कहानी कला के आरंभिक चरण में ही उसने वह दृष्टि अर्जित कर ली थी जो तंग और अंधेरी खोली में बैठी हुई टखियाई की आत्मा की गहराइयों में उतर जाती है। वेश्या को इतनी वस्तुनिष्ठ और संवेदनामय दृष्टि से देखने वाला कहानीकार विश्वसाहित्य में शायद मुश्किल से नज़र आयेगा।

स्त्री वेश्या बनती हैं तो उसके भीतर की स्त्री मर नहीं जाती। बल्कि अपनी मानवीय अपेक्षाओं और व्यवहारों के साथ जीवित रहती है। वेश्या पर अपनी कहानियों में मंटो का सरोकार यही रहा है कि कहवाख़ाने के घिनौने वातावरण में वह उन झलकियों को देख ले जो वेश्या की आधारभूत मानवता और स्त्रीत्व का सबसे बड़ा तर्क हैं। मंटो वेश्या को Sentimentalize और Idealize नहीं करता। वह उसके नैतिक व्यक्तित्व को उभारने के लिए उससे कोई सदाचार और परोपकार का कार्य नहीं कराता। मंटो के लिए वेश्या की अच्छाई और बुराई का मानदंड नैतिक तो हो ही नहीं सकता। अब वह अपनी मनुष्यता से ही हमें प्रभावित कर सकती है। अतएव मंटो वेश्या को दैनिक जीवन में उसके एकाकीपन और अभावों और छोटी-छोटी इच्छाओं के साथ देखता हे। उदाहरण के लिए सुल्ताना की यह इच्छा है कि मुहर्रम पर वह काली शलवार पहने। जब हम सुल्ताना की इस इच्छा से अवगत होते हैं तो सुल्ताना का धंधा हमारी दृष्टि में गौण हो जाता है। वह उन हजारों और लाखों स्त्रियों में से एक नज़र आती है जिनके जीवन में बहुत साधारण-सी इच्छाएं और आवश्यकताएं हैं। सुल्तान का घर रेलवे यार्ड के सामने था। मंटो ने पटरियों, फक-फक करते इंजन और शंटिंग करते डिब्बों से सार्थक उपमाएं लेकर सुल्ताना के एकाकी और अर्थहीन जीवन की विडम्बना को ऐसे प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्ति दी है कि हम अनायास ही प्रशंसा करने लगते हैं। एक मिसाल देखिए :

"फिर कभी-कभी जब वह गाड़ी के किसी डिब्बे को जिसे इंजन ने धक्का देकर छोड़ दिया हो, अकेले पटरियों पर चलता देखती तो उसे अपना खयाल आता। वह सोचती कि उसे भी किसी ने जिंदगी की पटरी पर धक्का देकर छोड़

दिया है और वह खुद-ब-खुद चली जा रही है .... न जाने कहाँ, फिर एक रोज़ ऐसा आयेगा जब उस धक्के का ज़ोर आहिस्ता-आहिस्ता खत्म हो जायेगा और वह कहीं रुक जायेगी। किसी ऐसे मुकाम पर जो उसका देखा-भाला न होगा।"

वेश्या के जीवन के अकेलेपन का जो एहसास मंटो की इस कहानी में उभरता है वह इससे अधिक तीव्र और भयावह रूप में 'हतक' में दिखाई देता है। वेश्या पर लिखी गयी कहानियों में अकेलेपन का वर्णन किसी अन्य कहानीकार के यहाँ मुझे नज़र नहीं आया। वास्तव में वेश्या को चकले की रौनक भरी रातों में देखने के हम इतने अभ्यस्त हो चुके हैं कि उसके जीवन के भांय-भांय करते सन्नाटों को हम देख नहीं पाते। दिल्ली में सुल्ताना का कारोबार जमा नहीं। ग्राहक आते नहीं। छोटे-मोटे आभूषणों की जो पूँजी थी, ख़त्म हो रही है। दिन पहाड़ और रातें उजाड़ बन रही हैं। मंटो ने सुल्ताना के दारिद्र्य और एकाकीपन का वर्णन कुछ इस प्रकार किया है कि पाठक के होटों से दुआ निकल जाती है कि 'हे ईश्वर ! इस स्त्री के लिए कुछ कर, ग्राहक भेज बेचारी के लिए।'

पाठक के मुँह से दुआ इसलिए निकलती है कि कहानी का समूचा वातावरण और उसकी केंद्रीय विषयवस्तु का सम्बंध अगाध धार्मिक भावनाओं से हैं। सुल्ताना को गहरी काली शलवार चाहिए मुहर्रम के लिए। सुल्ताना को गहरी श्रद्धा है हज़रत ख़्वाजा निजामुद्दीन से। खुदाबख़्श फोटोग्राफ़र जो उसे अंबाला से दिल्ली लाया था, फ़क़ीरों का श्रद्धालु है। कुछ करता-कराता नहीं। बस दिलासा देता रहता है कि "अल्लाह ने चाहा तो सब अच्छा हो जायेगा।" संक्षेप में यह है कि सुल्ताना के कोठे पर अल्लाह के नाम का बड़ा चलन है। धार्मिक अश्रद्धा डूबते को तिनके का सहारा है। दुआ ज़रूरतमंदों की जरूरत पूरी करने के लिए ही की जाती है। और सुल्ताना की सबसे बड़ी ज़रूरत ग्राहक है। मंटो का कौशल यह है कि वह कहानी को ऐसा व्यंग्यात्मक रूप दे देता है कि पाठक समझ नहीं पाता कि सही क्या है और गलत क्या है ? मंटो एक बड़े कलाकार की भाँति अपनी बात ही वहाँ से शुरू करता है जहाँ पर तथाकथित रूढ़ नैतिक व्यवस्था के पंख झुलसने लगते हैं। यथार्थवादी दृष्टि का बुनियादी कार्य यह है कि कथाकार जीवन यथार्थ को इस रूप में प्रत्यक्ष करे कि द्रष्टा और यथार्थ के बीच कल्पना का कोई आवरण शेष न रहे। इस दृष्टि से मंटो अद्वितीय है। न खुदा से कुछ बन पड़ता है, न खुदा बख़्श से। शंकर जो वेश्याओं का मर्द है आता है तो सुल्ताना के जीवन में हर्ष की कुछ लहर सी आती है। और काली शलवार भी। सुल्ताना के नक़ली सस्ते बुंदों को कीमती बताकर उनके बदले वह अनवरी से उसकी काली शलवार ले आता है। कोठे पर, जैसा कि बाबू गोपीनाथ कहता है, धोखा ही धोखा है। यहाँ जो काम धोखा धड़ी से होते हैं, सदाशयता से नहीं हो पाते।

'हतक' वेश्या के विषय पर मंटो की सबसे प्रसिद्ध कहानी है। यह कहानी यथार्थ परकता और संवेदनशीलता का ऐसा यौगिक है कि पाठक पथराई आँखों से सौगंधी के पतन को देखता है और उसकी दुर्दशा के प्रति गहरी सहानुभूति व्यक्त करता है। मंटो सौगंधी की खोली के घृणास्पद परिवेश को इतनी सूक्ष्मता के साथ चित्रित करता है कि वीभत्सता के बावजूद पाठक उस खोली पर दृष्टि जमाये रहता है। कारण यह है कि मंटो के पास वस्तुस्थिति को पहचानने, आकर्षण में विकर्षण का आश्चर्य पैदा करने, जादुई शब्दों द्वारा चित्रांकन करने और अद्‌भुत उपमाओं द्वारा वीभत्स को भी कला के स्तर पर मनोरम बनाने की रचनात्मक क्षमता है।

कहानी का गठन भी बहुत कलात्मक है। आश्चर्य है कि एक छोटी-सी कहानी में कितनी सामग्री भर दी गयी है। घटना संयोजन में भी बहुत संतुलन है। हर चीज़ समय और परिस्थति के अनुरूप इतनी सहजता से उद्‌घाटित होती है कि जटिलता और वायवीयता की कहीं गुंजाइश नहीं रहती।" म्युनिसपिल कमेटी का सफ़ाई का दारोग़ा अभी-अभी गया था। और सौगंधी खराब शराब के नशे में अपने बिस्तर पर पड़ी हुई थी। उसका सीना अंदर से तप रहा था और मुंह का स्वाद बिगड़ रहा था। रात को दो बजे रामलाल दरवाज़ा खटखटाता है। वह एक ग्राहक लाया है जो नीचे टैक्सी मैं बैठा है। सौगंधी तैयार होकर नीचे जाती हे। जब वह कार के पास पहुँचती है तो भीतर से बैटरी की रोशनी उसके चेहरे पर फैल जाती है। एक आवाज़ आती है 'ऊंह' और टैक्सी अंधेरे में गुम हो जाती है। यह सेठ की ऊँह सौगंधी के मन में तूफान उठा देती है। यह ऊँह उसका घोर अपमान है, जिसे वह सहन नहीं कर पाती। वेश्यावृत्ति से ज्यादा घिनौना पेशा कौन-सा होगा। लेकिन इस पेशे में भी वेश्या ऊंह को सहन नहीं कर सकती। क्योंकि यह 'ऊंह' तो उसके समूचे अस्तित्व का अस्वीकार है। यदि वह वेश्या के योग्य भी नहीं रही तो जीयेगी कैसे ? वेश्यावृत्ति तो अंतिम चट्‌टान है जिसके बाद शून्य ही शून्य है। अतएव सौगंधी का आंतरिक आक्रोश और आवेश अपने जीवन का आधार है, जीवित रहने का मोर्चा है। लेकिन यही उसकी त्रासदी है। वह हारी हुई जंग लड़ रही है। पाँच वर्ष के देह व्यापार ने एक सुंदर-सलोनी लड़की को निचुड़ी हुई वेश्या बना दिया है। इतनी जल्दी बुढ़ापा उसके दरवाजे पर दस्तक देने चला आता है। अपने और दूसरों के सम्बंध में उसने जो भ्रम पाल रखे थे, वे पल भर में टूट जाते हैं। जब वह खोली में वापस आती है तो उसका अंतिम भ्रम और अंतिम सहारा माधो खोली में आन टपका है, जो पूना में हवलदार था और सौगंधी का भार बनकर उससे पैसे ऐंठता रहता था। अब सौगंधी का मोहभंग हो चुका था। पहले वह जानकर अनजान बनती थी क्योंकि जीवन के चिलचिलाते

रेगिस्तान में यही वह मृगमरीचिका थी जिससे वह अपनी प्यास बुझाने का भ्रम पाले हुए थी। अब वह माधों को तिरस्कृत करके लोटा देती है। वह अब कोई धोखा नहीं खाना चाहती। तो क्या वह यथार्थ के धरातल पर जी सकती है ? क्या वह इस यथार्थ से आँखें चार कर सकती है कि वह दूसरों के योग्य नहीं रही ? माधो बदसूरत, झूठा और धोखेबाज़ था। लेकिन वह जज़्बाती सहारे के तौर पर काम का लगता था। अब उसे भी निकल कर बाहर किया तो वह बिल्कुल एकाकी रह गयी। उसने अपने चारों ओर एक भयावह सन्नाटा देखा। ऐसा सन्नाटा जो उसने पहले कभी नहीं देखा था। जैसे यात्रियों से लदी हुई रेलगाड़ी सब यात्रियों को स्टेशनों पर उतारकर अब लोहे के शेड में अकेली खड़ी है। इस शून्य से घबराकर उसने अपने खजहा कुत्ते को गोद में उठा लिया और सागवान के चौड़े पंलग पर उसे पहलू में लिटा कर सो गयी।

'दस रुपये' कहानी की शुरुआत ही इस वाक्य से होती है, "वह गली के उस नुक्कड़ पर छोटी-छोटी लड़कियों के साथ खेल रही थी।" एक और कहानी 'शादां' भी ऐसे ही वाक्य से शुरू होती है। लेकिन मध्यवर्गीय जीवन की कहानी 'शादां' में देहवाद की व्याप्ति है, जबकि 'दस रुपये' की केंद्रीय पात्र सरिता एक कमसिन वेश्या है। लेकिन कहानी देहवाद के प्रभाव से मुक्त है। इस कहानी में जीवन का वह सुखद अनुभव है जो देहवाद से निष्प्रभावित है और जिसके मूल में प्रकृति का आह्लादकारी वातावरण है। सरिता की आयु अधिक से अधिक पन्द्रह वर्ष की होगी लेकिन उसमें बचपना तेरह वर्ष की लड़कियों का था। महिलाओं से मिलना-जुलना, उनसे बातें करना उसे बिल्कुल पसंद नहीं था। सारा दिन छोटी-छोटी लड़कियों के साथ ऊट पटांग खेलों में व्यस्त रहती। मंटो अपनी असाधारण मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इस तथ्य को उजागर कर देता है कि वेश्यावृति में देह और दैहिक अपेक्षाएं धीरे-धीरे अपना अर्थ खो देती हैं। और जीवन की अन्य रुचियाँ सक्रिय हो उठती हैं, जैसे—बच्चों के साथ खेलना, मोटर में घूमना-फिरना, या घर संभालना (शारदा) या स्वादिष्ट भोजन बनाना (बर्मी लड़की) या अपनी संतान के लिए जीवन होम कर देना (फ़ोभा बाई) ये चीजें अपना अस्तित्व और अपनी ताकत रखती हैं। सरिता को मंटो ने बिल्कुल अल्हड़ और मासूम लड़की नहीं बताया। आखिर वह जीवन के रहस्य जान चुकी है। लेकिन उसके जीवन के आरंभिक सोपान में ही निर्लिप्तता का भाव जाग्रत हो चुका था। वह बच्चों के बीच कुदकड़े लगाती है तो बिल्कुल भूल जाती है कि वह एक कोमलांगी वेश्या है। लेकिन वेश्यावृति के मामले में भी वह ऐसी अल्हड़ थी कि नहीं जानती थी कि वह क्या कर रही है ! लोगों के साथ होटल या बाहर अंधेरे मुक़ामों पर जाने को वह तफ़रीह समझती थी। वह समझती कि शायद दूसरी लड़कियों के साथ भी ऐसा ही होता

होगा। मंटो यह भी बताता है कि सरिता का मन हर प्रकार की चिंता और दुविधा से मुक्त था। यह भी मानो उसकी उम्र का तक़ाज़ा था। उसकी सेठ लोगों में उतनी रुचि नहीं थी जितनी उनकी मोटर में। मोटर की सवारी उसे बहुत पसंद थी। बंद कमरों में सेठ जब शराब पाना शुरू कर दे तो उसका दम घुटने लगता जब मोटर फर्राटे भरती, खुली-खुली सड़कों पर चलती और उसके मुंह पर हवा के तमाचे पड़ते तो उसे अनिर्वचनीय आनंद की अनुभूति होती। आप देखेंगे कि यौवन के उभार की वय में भावनाओं की जो तरंगें उठती हैं, वे देह की सीमा में आबद्ध नहीं रहती हैं, अपितु देह से परे उन्मुक्त वातावरण में उड़ना चाहती हैं। वेश्या में मंटो हमेशा स्त्री के विविध रूप देखता है। सरिता में यह रूप दरिद्रता के बाजजूद जीवन से आप्लावित एक अल्हड़ लड़की का है। उसकी आभा पर अभी देहव्यापार की काली और लम्बी छाया नहीं उतरी है। देह उसके नवोदित यौवन की एक कड़ी बन जाती है लेकिन अन्य भावों का अतिक्रमण नहीं करती। देह को लेकर सरिता के अनुभव अप्रिय नहीं रहे हैं, उसमें वह उदासी नहीं जो 'किताब का खुलासा' की विमला में है जिसके लिए बाप के रूप में सम्बंध रखने वाले हरमैन के साथ त्रासद अनुभव से गुज़रना पड़ा है। सरिता में वह कटुता नहीं, जो 'शांति' और 'सिराज' में है; जो अपने प्रेम के साथ छल करने पर दोनों के जीवन में पैदा हुई है। मंटो सरिता में उदासी और अवसाद, कटुता और विकलता नहीं दिखाता। क्योंकि देहव्यापार ने कमसिन लड़की के जीवन में एक तरंग का रूप ले लिया है। वास्तव में जीवन यथार्थ के इसी सूक्ष्म निरीक्षण के कारण मंटो के चरित्रों में इतनी गहराई, विविधता और निजता दृष्टिगत होती है।

सरिता तीन नौजवानों के साथ कार में जाती है। अब जो कुछ आनंद है, वह ड्राइविंग का है, गति का है; जिसका एक नशा होता है। शीतल हवाओं के थपेड़ों का है। सैर व तफ़रीह का है। तीनों नौजवान भी हंसी और खिलवाड़ में इतने डूब जाते हैं कि लड़की के साहचर्य के बाबजूद देह को भूल जाते हैं। ज़ब मोटर सरिता को उसके घर की सड़क पर उतारती है तो सरिता दस रुपये का नोट लौटा देती है जो उसे दिया गया था। रुपये किस बात के ? कुछ हुआ ही नहीं।

'पहचान' में' तीन नौजवान खराब शराब पीकर, जिससे उनका मूड किरकिरा हो जाता है, औरत की तलाश में निकलते हैं। तांगे वाला उन्हें टेढ़ी-मेढ़ी गलियों और अंधेरी खोलियों में ले जाता है जहाँ एक से एक कुरूप, घृणित और धंधा करने वाली स्त्रियों को देखकर उन्हें वितृष्णा हो जाती है। यह कहानी यथार्थवाद के उस रूप का अच्छा नमूना है जो जीवन के कुत्सित पक्षों का चित्रण करता है। यहाँ कला की चुनौती यह है कि वीभत्स यथार्थ को कला के यथार्थ में रूपांतरित

किया जाये। वास्तविकता कुरूप और कुत्सित ही रहती है, लेकिन कथाकार के अनुभव और संवेदन उसे कलात्मक सौंदर्य का रूप दे देते हैं और हम यथार्थ से सीधा साक्षात्कार कर सकते हैं। यह कहानी चित्रांकन का अनोखा नमूना है। हर चित्र का रंग और रूप अलग है। कहानीकार विभिन्न पेशेवर औरतों को तीन नौजवानों की दृष्टि से देखता है। इन नौजवानों की अपनी पसंद और नापसंद है।

कहानीकार की कुशलता इस बात में है कि वह अपनी निष्पक्ष दृष्टि को भावुकता और व्यंग्य से बचाये रखे और मंटो इसमें सफल रहा है। वेश्या से सहानुभूति मंटो को इतना विक्षुब्ध नहीं करती कि वह अंधेरी खोलियों में विद्यमान कुरूपता और वीभत्सता पर दृष्टिपात न कर सके। वह उसे घृणा और वितृष्णा महसूस किये बिना देखता है, पथरीली आँखों से। और नज़र पथरीली न हो तो चित्रकार चित्रों में रंग कैसे भरेगा ? कोई और कहानीकार होता तो इस परिवेश का एक ऐसा चित्र खींचता जो घृणा उत्पन्न करता, अपमान का भाव जगाता, उपहास करता या कहानीकार व्यंग्य करता, वितृष्णा जगाता, भावुक बन जाता, कलम खून के आँसू रोता या मानवीय अस्तित्व की पराजय का बोध कराता। मंटो भावनात्मक पूर्वग्रहों की इन खंदकों में नहीं गिरता क्योंकि वह एक मँजा हुआ कलाकार है और उसके पास वह यथार्थवादी चेतना संपन्न दृष्टि है जो कला की कठोर परीक्षा के पश्चात् ही प्राप्त हो सकती है।

'खुशिया' वेश्या की नहीं, बल्कि वेश्या के एक दलाल की कहानी है, जिसका नाम 'खुशिया' है। यह कहानी मनोविश्लेषणात्मक यथार्थ चित्रण का बहुत ही अच्छा नमूना है। काले तंबाकू वाला पान चबाते हुए संगीन चबूतरे पर बैठा हुआ खुशिया सोच रहा था। सोचने और पान चबाने की क्रिया साथ-साथ चलती है। मंटो ने दोनों क्रियाओं का बड़े मितकथन के साथ वर्णन किया है। बात सिर्फ़ इतनी थी कि खुशिया ने कांता के दरवाज़े पर दस्तक दी। भीतर से आवाज़ आयी, "कौन है ?" जवाब मिला, "मैं खुशिया !" दरवाज़ा खुला। खुशिया ने भीतर प्रवेश किया। जब दरवाज़ा भीतर से बंद हुआ तो खुशिया ने मुडक़र देखा कि कांता लगभग नग्न थी। वह नहाने जा रही थी। खुशिया इसी घटना के विषय में सोच रहा था। कांता की इस चेष्टा ने खुशिया के पौरुष को भारी धक्का पहुँचाया। उसे लगा कि जैसे उसका अपमान हुआ है। वह दलाल हुआ तो क्या हुआ, था तो मर्द। औरत वेश्या बनती है तो इसका अर्थ यह नहीं कि औरत, औरत नहीं रही। वेश्या को भी बहुत बुरा लगता है जब उसके साथ ऐसा आचरण किया जाता है जो कि औरत की मान-मर्यादा के विपरीत हो। खुशिया मर्द था और वह चाहता था कि औरतें चाहे शरीफ़ हों या बाज़ारी–उसे मर्द ही समझेंगी। और उसके और अपने

बीच वह पर्दा क़ायम रखेंगी, जो एक मुद्दत से चला आ रहा है। मंटो की खूबी यह है कि वह सामाजिक दृष्टि से निम्न कोटि के लोगों में भी मानवीय गुणों की खोज कर लेता है। हम समझते हैं कि आत्म सम्मान की भावना केवल संभ्रांत वर्ग के व्यक्तियों में ही होती है। मंटो इस भावना को मानवीय अस्मिता का अंग समझता है। ध्यान रहे कि मंटो का सरोकार किसी नैतिक आदर्श की प्रतिष्ठा करना नहीं होता, बल्कि मानवीय स्वभाव के रहस्यों को उद्घाटित करना होना है। नैतिकतावादी दृष्टिकोण तो नैतिकता से गिरा हुआ जीवन बिताने वालों में मानवीय तत्व को स्वीकार ही नहीं करता। उदाहरण के लिए हमें यह भ्रांति बहुत सुखद प्रतीत होती है कि नौकरों में काम वासना होती ही नहीं है या होती भी है तो मालिकों की तरह नहीं। संवेदनशून्यता तो हमें यही सिखाती है कि जानवरों को पीड़ा नहीं पहुँचती या निम्न वर्ग या दूसरे रंग के लोगों को बड़ी से बड़ी विपत्ति आने पर भी वह पीड़ा अनुभव नहीं होती (क्योंकि उनकी मोटी खाल है) जो कि हमें सूई चुभने से होती है। यथार्थवाद का सबसे बड़ा कारनामा यही है कि वह हमारे भ्रमों को अनावृत्त करता है। मंटो की कहानियाँ गिरे-पड़े लोगों में भी मनुष्यता की ऐसी झलक दिखाती हैं कि हम स्तब्ध रह जाते हैं। आख़िर खुशिया मर्द था। क्या कांता समझती थी कि औरत का जादू उस पर नहीं चलता। वह इतना बर्फ़ीला है कि बदन के अंगारे की आंच उसके लिए कोई अर्थ नहीं रखती। क्या वह दीवार पर टंगी हुई तस्वीर है, पत्थर की प्रतिमा है, निष्प्राण एवं संवेदन शून्य, मात्र एक वस्तु ! नहीं ! वह पूरा आदमी है। एक जीवित अस्तित्व है। मंटो ने बड़े सुंदर ढंग से बताया है कि खुशिया में इस बात की चेतना थी कि उसका अवचेतन कांता की निर्वसन देह का प्रभाव स्वीकार रहा है। लेकिन वह इस बात को नहीं समझती थी। खुशिया जानता था कि कांता तो उसे सिर्फ़ खुशिया ही समझ रही है जो उसके पास आने वाले लोगों की तरह उसका ग्राहक नहीं। मात्र दलाल है। ग्राहक तो मर्द होता है और दलाल ? .... इसमें भला मर्द जैसी बात कहाँ ? शायद नामर्द ही होते हों। अपने सम्बंध में कांता की इस धारणा को ग़लत साबित करना ज़रूरी है अन्यथा वह स्वयं को कांता की ही दृष्टि से एक बेजान मूरत की तरह देखता रहेगा, एक ऐसी वस्तु जिसका कोई मूल्य नहीं। कांता के कारण स्वयं अपनी दृष्टि में जो उसकी प्रतिष्ठा का हनन हुआ है, उसे पुनः अर्जित करना है। यह काम लड़-झगड़ कर अपनी बात मनवा कर नहीं किया जा सकता। कांता उसकी बातों पर हंस देगी। इसकी एक ही युक्ति है कि वह कांता के पास आने वाले ग्राहकों वाला ढंग अपनाये। वह यही करता है। टैक्सी लेकर कांता के कोठे पर जाता है। एक आदमी के ज़रिए बात पहले से तय हो चुकी है, कांता नीचे आती है, खुशिया को देखकर भौंचक्का रह जाती है और खुशिया उसे टैक्सी में

बैठा कर जुहु की तरफ़ ले जाता है। इसके बाद खुशिया फिर उस चबूतरे पर नज़र नहीं आता है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि उसमें जो नूतन अहं जाग्रत हुआ है, उसे वह ऐसे निकृष्ट धंधे में नष्ट नहीं करना चाहता, जहाँ आदमी, आदमी न रहे। मात्र एक भावशून्य वस्तु बन जाये।

'जानकी' नामक कहानी में स्त्री की ममता का रूप सेवा भाव और परोपकार के रूप में चित्रित हुआ है। जानकी धंधा करने वाली वेश्या नहीं है। संभव है वह पेशावर में रही हो लेकिन वहाँ भी वह अज़ीज़ साहब की चहेती थी जिन्होंने उसे फिल्मों में काम तलाश करने के लिए बम्बई भेजा है। यहाँ भी वह अज़ीज़ के स्वास्थ्य को लेकर चिंतित रहती है और व्यग्रता से उसके पत्रों की प्रतीक्षा करती है। लेकिन बम्बई में उसके सईद के साथ शारीरिक सम्बंध स्थापित करने में अज़ीज़ के प्रति लगाव कहीं आड़े नहीं आता जब वह सईद के निकट आती है तो उसकी भी सेवा करती है। बीमारी में देख-भाल करती है और उसकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करती है। अजीज़ पेशावर से आता है। लेकिन जब जानकी को सईद के प्रति आकृष्ट देखता है तो नाराज़ होकर चला जाता है। फिर भी अज़ीज़ के प्रति उसके प्रेम-भाव में कोई कमी नहीं आयी। सईद निहायत मतलबी आदमी है। बुख़ार होने के बावजूद जानकी उसके बुलावे पर पूना से बम्बई आती है, लेकिन क्योंकि तुरंत नहीं आ सकी इसलिए वह जानकी को गुस्से में आकर बाहर निकाल देता है। उसका बुखार निमोनिया में बदल जाता है और अस्पताल में उसकी दशा बिगड़ जाती है। नरायन, जिससे जानकी बहुत चिढ़ती थी, उसे अस्पताल से घर ले आता है और कहीं न कहीं से पेनिसिलीन के इंजक्शन– जिनका आविष्कार नया-नया हुआ था इसलिए दुर्लभ थे–चुरा लाता है और रात भर जाग-जाग कर ठीक तरह से लगाता है। जानकी अच्छी हो जाती है और वह नरायन को स्वीकार कर लेती है।

बावजूद इसके कि 'जानकी' के कुछ अंश बहुत अच्छे हैं, यह कहानी नाटकीयता, सायास्ता और भावुकता का शिकार हो गयी है। सईद से प्रेम, नरायन से घृणा, सईद का जानकी को ठुकराना, नरायन का तीमारदारी करना–ऐसे नाटकीय विरोधाभास हैं जो कहानी की सायास योजनाबद्धता को प्रदर्शित करते हैं। इसमें वह सहजता नहीं हो श्रेष्ठ कला की पहली पहचान है।

इसके विपरीत 'बर्मी लड़की' सायास योजना-बद्धता के बावजूद कला की सहजता पैदा कर पाती है। यह नन्हीं-मुन्नी बर्मी लड़की ज्ञान और किफ़ायत के फ्लैट में बहार के एक झौंके की तरह आती है और चली जाती है। रोचक बात यह है कि वह उनके यहाँ चार-पाँच दिन रहती है और वे उसका नाम भी नहीं जान पाते क्योंकि दोनों धनार्जन की ऐसी दौड़धूप में फँसे हुए हैं कि सुबह जाते

हैं तो शाम को आते हैं और कभी रात-रात भर गायब रहते हैं। बर्मी लड़की बहुत अच्छा नाश्ता तैयार करती है। मछली तलती है। चीज़ें साफ़-सुथरी ठिकाने से रखती है। तीनों नौकर उसकी उपस्थिति से इतने प्रसन्न हैं कि बशीर तो अपने वतन जाने का इरादा टाल देता है। बर्मी लड़की 'जानकी' की तरह सेवाभाव, परोपकार और ममता की नहीं, बल्कि स्त्रीत्व का प्रतीक है। जिसमें सुंदरता के साथ-साथ ईरोज़ के समान वह चमत्कारपूर्ण शक्ति है कि उसके कोमल स्पर्श से हर चीज़ में एक निखार पैदा हो जाता है।

"फोभा बाई" में ममता की भावना को व्यापक और प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्ति मिली है। वास्तव में यह शोभा बाई का विकृत उच्चारण है। क्योंकि उच्चारण दोष के कारण 'स' और 'श' की ध्वनि 'फ' में बदल जाती है। शोभा बाई एक साधारण रूप-रंग की स्त्री है जिसके होंटों पर घाव का और पेट पर एक बड़े आपरेशन का निशान है। इसी आपरेशन के कारण उसे मार्फ़िया के इंजक्शन लेने की आदत पड़ गयी है। वह बहुत से बेतुके शे'र अपने बताकर सुनाती है। शे'र सुनाने की उसे सनक है जो कि उसके मुंह से बहुत हास्यास्पद लगते हैं। क्योंकि वह 'श' को 'फ' के रूप में उच्चारित करती है। पूरी कहानी में सदोष उच्चारण को व्यंग्य का लक्ष्य बनाया गया है। शोभा बाई वास्तव में एक मुसलमान वेश्या है जिसका जयपुर में एक लड़का है। वह हर महीने उसे दो सौ रुपये भेजती है और जब महीनों के अंतराल से उससे मिलने जाती है तो जयपुर में गाड़ी से उतरते ही बुर्क़ा पहन लेती है। शोभा बाई को मंटो ने बहुत ही मामूली औरत के रूप में प्रस्तुत किया है ताकि उसमें ममता की भावना असाधारण प्रतीत न हो। शोभा बाई के भीतर दो स्त्रियाँ जीवित हैं—एक माँ और एक वेश्या। यकायक जयपुर में शोभाबाई का बेटा मर जाता है। जयपुर से उसका पत्र आता है: "मेरी अंधेरी ज़िंदगी में सिर्फ एक दिया था, वह कल खुदा ने बुझा दिया। भला हो उसका।" बेटा न रहा तो शोभा बाई के भीतर की माँ मर गयी। वह वेश्या बनी थी बेटे के लिए, अपनी भीतर की माँ को जीवित रखने के लिए माँ मर गयी तो वेश्या भी मर गयी। वह अस्थि पंजर मात्र रह गयी। आँखें भीतर को धंसी हुई। बाल धूल धूसरित और उड़े-उड़े। मार्फ़िया के इंजक्शन के लिए पाँच रुपये की भीख माँगती फिरती थी।

'फ़ोभा बाई' मंटो की बहुत प्रभावशाली कहानी है। यहाँ वह वेश्या के अस्तित्व की त्रासदी को अत्यंत माार्मिक दृष्टि से व्यंजित करता है।

इन कहानियों के अलावा वेश्या पर जो अन्य कहानियाँ है उनमें ममता की थीम नहीं बल्कि दूसरे मनोवैज्ञानिक संदर्भ हैं। उदाहरणार्थ 'शांति' एक ऐसी कश्मीरी लड़की की कहानी है जिसे एक चाहने वाले ने धोखा दिया है और वह

बड़ी कष्टप्रद परिस्थितियों में बम्बई में आकर पेशा करती है। लेकिन पेशे में तो क्या उसे अपने-आप में दिलचस्पी नहीं है। लिपस्टिक लगाने और साड़ी बाँधने में भी लापरवाही झलकती है। काम जितनी कारोबारी बात करती है। प्रेम-सम्बंधों में उसे विश्वास नहीं। इस मामले में वह बड़ी निष्ठुर है। यदि वेश्या में भी स्त्री जीवित नहीं तो वह दया की पात्र है। ऐसा प्रतीत होता है कि शांति को कोई भारी आघात पहुँचा है जिसके कारण उसके भीतर की स्त्री अपना अस्तित्व खो चुकी है और उसकी शारीरिक अपेक्षाएँ एवं स्त्रियोचित भावनाएँ बर्फ़ हो चुकी हैं। प्रश्न यह है कि इस बर्फ को कैसे पिघलाया जाये ? उसके भीतर की मृत स्त्री और उसकी हिमवत् देह को कैसे जीवित किया जाये ? यह काम मक़बूल करती है। उसे थप्पड़ मारकर, उसे दूसरा शॉक पहुँचा क़र। क्योंकि रिक्त जीवन के सन्नाटों में थप्पड़ की आवाज़ ही गूँज सकती है। हिंसा ही जड़ता को तोड़ती है और आत्मीयता का सूर्य ही जमी हुई बर्फ़ को पिघलाता है। वेश्या की केंचुली उतार कर जब एक नयी स्त्री शांति के रूप में प्रकट होती है तो मक़बूल अपनी इस सर्जना को हमेशा के लिए अपना लेता है।

शांति की तरह 'सिराज' ने भी एक भारी आघात सहा है। इस आघात ने उसमें एक ऐसी मनोवैज्ञानिक ग्रंथि उत्पन्न कर दी है कि जब तक वह खुलती नहीं, सिराज आत्मकेंद्रित, अन्यमनस्क और उदासीन बनी रहती है और चरस के सिगरेट पिया करती है। मंटो लिखता है : "मगर यह वीरानी क्या थी ? क्यों थी? कई बार ऐसा होता है कि आबादियां ही वीरानियों का वायस होती हैं—क्या वह इसी किस्म की कोई आबादी थी जो शुरु होने के बाद किसी हमलावर की वजह से अधूरी रह गयी थी और आहिस्ता-आहिस्ता उसकी दीवारें जो अभी गज भर भी ऊपर नहीं उठी थीं, खंडहर बन चुकी थीं।" एक स्थान पर मंटो सिराज की एक ऐसी सुराही से उपमा देता है जिसमें उसकी क्षमता से अधिक पानी मिली शराब भर दी गयी हो। सिराज में तेज़ शराब की भाँति ही तीखापन था लेकिन ऐसा लगता था जैसे किसी धोखेबाज़ ने उसमें पानी मिला दिया है।

सिराज अपने दलाल ढोंढू को लेकर लाहौर जाती है। वहाँ वह बुर्की ओढ़े दिन-रात गलियों में किसी को तलाश करती रहती है। आख़िर एक दिन एक आदमी की ओर संकेत करके ढोंढू से कहती है, "इसे ले आओ।" ढोंढू उसे बर्मी लड़की का लालच देकर ले आता है। सिराज कमरे में उसका गिरेबान पकड़ लेती है। यही वह पुरुष था जिससे सिराज ने प्रेम किया था।

घर-बार छोड़कर उसके साथ भाग खड़ी हुई थी और वह उसे छोड़कर चला गया था। जो शरीर उसने उसके लिए बचाकर रखा था, उसे वह रात को उसे सौंप देती है। और सुबह जब वह सो रहा होता है, उस पर बुर्क़ा डालकर ढोंढू के साथ बम्बई के लिए रवाना हो जाती है।

'शारदा' भी बहुत अच्छी कहानी है। घटना-संयोजन इतना सुव्यवस्थित है कि कथ्य के अर्थायाम अपने-आप खुलते चले जाते हैं। शारदा एक बच्चे की माँ है जो जयपुर से बम्बई अपनी छोटी बहन शकुंतला को लेने आयी है, ताकि जयपुर में उसका विवाह कर सके। शारदा का पति और शकुंतला का पिता दोनों नालायक़ और निकम्मे साबित होते हैं। शारदा इस पेशे में आना नहीं चाहती और शकुंतला को बचाना चाहती है। लेकिन नज़ीर जब उससे मिलता है तो उसकी सुंदरता पर मुग्ध हो जाता है। शारदा भी उसके प्रति आकृष्ट हो जाती है। मानो कि शारदा के भीतर की स्त्री में एक माँ, एक बहन और एक प्रेमिका का रूप छुपा हुआ है। नज़ीर दिन-ब-दिन उसका रसिया होता जाता है। नज़ीर की पत्नी जब पाकिस्तान चली जाती है तो शारदा जयपुर से आकर फ्लैट में रहने लगती है। अब वह पत्नी और गृहस्थिन बन जाती है। और यहीं कहानी में मोड़ आता है। शारदा नज़ीर का स्वेटर बुनती है, सोडे मंगवा कर रखती है, शेव का सामान मेज़ पर रखती है, पानी गर्म कराके उसे देती है, घर की सफ़ाई करती है, खुद झाड़ू देती है और नज़ीर उस गंदे होटल को याद करता है जहाँ वह शारदा से मिलकर खुश रहता था। वहाँ शारदा का बच्चा उसके साथ होता जिसे वह खेल में लगाये रहता। अब वह नहीं था तो शारदा अधूरी लगती थी, वह बदल भी गयी थी। बहुत बोलती थी। व्यर्थ की बातें किया करती। पहले नज़ीर को पाप-बोध नहीं होता था। अब वह महसूस करता था कि अपनी पत्नी से विश्वासघात कर रहा है। इधर शारदा से वह उकता गया था, लेकिन उससे कह नहीं सकता था! क्या उसे लगाव नहीं रहा था या शारदा में वह पहले जैसा आकर्षण नहीं रह गया था, यह औरत मेरी दूसरी बीवी क्यों बन गयी है ? नज़ीर को स्वयं से घृणा होने लगी। अंततः वह दिलन की बात कहता है और शारदा चली जाती है। लेकिन तिपाई पर उसके पसंदीदा सिगरेटों का डिब्बा ख़रीदकर रख जाती है जो उसके प्रेम की निशानी है। शारदा माँ, बहन, रखैल और पत्नी की भूमिकाएं निभाती है। उसमें कोई खोट नहीं। सब भूमिकाएं झरनों की भाँति एक नदी का रूप ले लेती हैं जो उसके स्त्रीत्व का स्वच्छ जल है। लेकिन पुरुष, स्त्री को एक ही भूमिका में देखने का अभ्यस्त है। वह उस वातावरण का अभ्यस्त होता है जिसमें वह भूमिका अदा की जाती है। वेश्या कोठे और गंदे कमरे में ही वेश्या होती है। घर में वह गृहिणी बन जाती है और उसके व्यक्तित्व में अनेक दोष लक्षित होने लगते हैं। आप देखेंगे कि नज़ीर का चरित्र एक विश्वासघाती पति, एक शौक़ीन मिज़ाज नौजवान, एक आत्म ग्लानि में डूबा हुआ आदमी, आत्म विरति, आत्मघृणा, बोरियत और उकताहट में बंटा हुआ है। जबकि शारदा के चरित्र में एक पूर्णता है। वह एक माँ, एक बहन, सेज की वेश्या और गृहिणी के रूप में एक भरी-पूरी स्त्री है। उसमें विश्वासघात का पश्चाताप

और पाप बोध नहीं है। अपने साधारण व्यक्तित्व के बावजूद वह एक पूर्ण स्त्री है। मंटो देखने में सीधे-सादे लगने वाली कहानियों में भी ऐसी विशेषताएँ उत्पन्न कर देता है कि पाठक आश्चर्यचकित रह जाता है।

'सौ कैंडल पावर का बल्ब' एक अद्वितीय कहानी है। एक आधुनिक भरे-पूरे शहर में दलाल एक ग्राहक को एक ऐसी इमारत के पास ले जाता है, जो अभी बन रही है और जहाँ सौ कैंडल पावर के बल्ब की रोशनी में एक स्त्री सो रही है। दलाल स्त्री को उठाता है तो वह कहती है, "मुझे सोने दो, खुदा के लिए मुझ पर रहम करो। मैं कितने दिनों से जाग रही हूँ।" मुश्किल से जब यह स्त्री उठकर आती है और ताँगे में बैठती है तो ग्राहक उसे देखता है। वह सिर से पैर तक उजाड़ थी। उसके पपोटे सूजे हुए थे। आँखें झुकी हुई थीं। उसका ऊपर का सारा धड़ भी झुका हुआ था जैसे कि वह एक ऐसी इमारत थी जो पल में गिर जायेगी। अब ग्राहक की दृष्टि में वह दलाल जो बड़ी बेबसी दिखाता था, स्त्री के पैर दबा-दबा कर उसे समझाता था फिर सख़्ती करने की धमकी देता था, एक ऐसे खूंखार जानवर की भाँति है कि उसका सिर कुचल देने को जी चाहता है। उस छोटी-सी कोठरी में जिसमें सिवाय चंद बर्तनों के कुछ नहीं, सौ कैंडल पावर का बल्ब और उसकी रोशनी ! यह एक मौन यंत्रणा का वातावरण है। दलाल न जाने कब से स्त्री की आत्मा का कांटा बना हुआ है और यह स्त्री न जाने कब से नहीं सोयी ! जब से आयी है तब से नहीं सोयी।

दूसरे दिन जिस मित्र को वह किस्सा सुना रहा है, वह उस जगह पर जाता है। तेज़ रोशनी में एक स्त्री फ़र्श पर बिछी चटाई पर लेटी है। उसने उसे गौर से देखा। सो रही थी। मुँह पर दुपट्टा था। उसका वक्ष साँस के उतार-चढ़ाव से हिल रहा था। उस स्त्री से कुछ दूर नंगे फ़र्श पर एक व्यक्ति पड़ा था जिसका सिर फटा हुआ था पास ही खून से सनी ईंट पड़ी थी।

इस कहानी में नींद हर चीज़ पर जहाँ तक कि जीवन और मृत्यु पर भी छायी हुई है। मानो कि छीनी हुई नींद ऐसी शक्ति बन जाती है जिसके सामने हर कोई असहाय बन जाता है। यह स्त्री सोना चाहती थी इसलिए दलाल का सिर कुचल डाला और उसके शव के पास ही सो गयी। यह कहानी वेश्या को केंद्र में रखकर जीवन-अस्तित्व की मूलभूत प्रवृत्तियों, उनकी संतुष्टि और वंचनाओं पर प्रकाश डालता है। देहव्यापार करने वाले की देह की भी अपनी अपेक्षाएँ हैं। उसकी देह भी एक मानवीय व्यवहार की अपेक्षा करती है। नींद से वंचित स्त्री की सोने की इच्छा इतनी प्रबल है कि उस व्यक्ति का सिर कुचल कर ऐसे सो जाती है जैसे हम मच्छर या खटमल (जो खून चूसने वाले जानवर हैं) मारकर खर्राटे लेने लगते हैं।

'सरकंडों के पीछे' वेश्या को केंद्र में रखकर लिखी गयी एक ऐसी कहानी है जो मानसिक विकृतियों की भयावहता को उजागर करती है। यहाँ ईर्ष्या का मनोभाव बहुत प्रभावी है, जो अपनी प्रकृति में विनाशकारी है। ईर्ष्या यहाँ विनाश (हलाकत) के रूप में विद्यमान है जो मृत्यु का प्रतीक है। ईर्ष्या में एक प्रकार का भोलापन है जो संदेह से परे है। नवाब का चरित्र भोलेपन का प्रतीक है जो अपनी माँ के साथ पेशावर के इलाके में एक कच्ची सड़क से जुड़े हुए सरकंडों के पीछे एक छोटे से मकान में रहती है। नवाब के पास पाँच-छः अच्छे धनवान ग्राहक नियमित रूप से आते रहते हैं। नवाब को इस धंधे से घृणा नहीं थी क्योंकि वह आबादी से इतनी दूर थी कि उसे वास्तविक सामाजिक जीवन का ज्ञान ही नहीं था। वह समझाती थी कि सभी लड़कियों के यौवन का आरंभ इसी प्रकार होता है। यों तो वह नितांत अश्लील स्त्री थी लेकिन उसे इस बात का बिल्कुल एहसास नहीं था कि वह पाप का जीवन बिता रही है। उसके यहाँ हैबत खान आता है और उसका प्रेमी बन जाता है। वह खूब पैसे दे-देकर ग्राहकों को आने से रोक देता है। लेकिन जब रात को सड़क पर से लॉरी निकलती है तो वह नवाब के साथ लेटे-लेटे चौंक जाता है। दरअसल में हैवत ख़ां को हलाकत यानी शाहीना का डर है। शाहीना एक संपत्तिशाली खान की पत्नी थी। खान की मृत्यु के बाद हैबत खान जब सांत्वना देने के लिए गया हो शाहीना ने उसे साधिकार भीतर बुलाकर अपने-आप को उसके सुपुर्द कर दिया था। जैसे वह उसका नौकर है।

हैबत ख़ान नवाब के लिए सोने के कड़े लाने का वादा करके जाता है लेकिन बहुत दिनों तक नहीं आता। नवाब बहुत व्याकुल है। एक दिन उसकी कार आती है और नवाब देखती है कि उसकी पिछली सीट पर एक बहुत ही सुंदर स्त्री कीमती ज़ेवर और कपड़े पहने बैठी है। हैबत खान और शाहीना दोनों नवाब को लेकर कमरे में जाते हैं। शाहीना बुढ़िया से खाना बनाने के लिए गर्म पानी रखने को कहती है और हैबत खान को बाहर भेज देती है। हैबत ख़ान बहुत विकल मनःस्थिति में लौटकर आता है तो देखता है कि फर्श पर खून ही खून है और कुछ मांस की बोटियां और छुरी पड़ी है। हैबत खान के पूछने पर कि नवाब कहाँ है शाहीना कहती है–"कुछ तो उस पलंग पर है लेकिन उसका बेहतरीन हिस्सा बावर्चीखाने में है। यह पहली मर्तबा नहीं दूसरी मर्तबा है। मेरा ख़ाविंद (पति) अल्लाह उसे जन्नत नसीब करे, तुम्हारी ही तरह बेवफ़ा था। मैंने खुद उसको अपने हाथों से मारा था और उसका ग़ोश्त पकाकर चीलों और कौवों को खिलाया था। तुमसे मुझे प्यार है, इसलिए मैंने तुम्हारी बजाय ..."

विचलित कर देने वाली कहानी है, लेकिन बड़े ठंडे मन और पूरे कलात्मक रख-रखाव के साथ लिखी है। इसमें कथा-कथन की सहजता है। कहानीकार ने

किसी प्रकार की उत्तेजना उत्पन्न करने का प्रयास नहीं किया। कहानी में कोई अतिनाटकीयता नहीं है। हत्या भी ठंडे मन से होती है और कहानी भी ठंडे मन से लिखी गयी है। इसी कारण पाठक ईर्ष्या और मृत्यु का खेल देखता है और विस्मित रह जाता है। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि मंटो फैमीनिस्ट नहीं था इसलिए रुक्मा, हलाकत और लतिकारानी जैसे चरित्रों की सृष्टि कर सकता था। मंटो की कलात्मक सूझबूझ की दलील यह है कि कहानी का केंद्रीय भाव ईर्ष्या है जिसमें हिंसा भी निहित है और सीमा क्षेत्र का परिवेश है जहाँ के ग्राम जीवन में मानवीय भावनाएँ चाकू की धार के समान तीक्ष्ण होती हैं।

मनुष्य की वासनाओं की निरंकुशता को मंटो वहाँ दर्शाता है जहाँ उसका सबसे कम संदेह होता है। 'शादां' कहानी तो आरंभ ही इस वाक्य से होती है :

"ख़ान बहादुर मुहम्मद असलम ख़ां के घर में खुशियाँ खेलती थीं और सही मानों में खेलती थीं। उनकी दो लड़कियाँ भी, एक लड़का।" और देखिए मंटो ने क्या कमाल किया है कि पूरी कहानी को बच्चों के खेलकूद से लबालब भर दिया है। साथ ही नवयुवती नौकरानी शादी के साथ ख़ान बहादुर का अंधेरा खेल भी जारी है। खान बहादुर की देह में वासना मर चुकी है लेकिन मन में जीवित है और इस मनोगत क्रीडा के लिए भरी-पूरी-स्त्रियाँ नहीं बल्कि कोमलांगी लड़कियाँ चाहिए वे भी नौकरवर्ग की; जो आज्ञाकारी हों। शादां से सम्बंध रंग लाता है। ख़ान साहब पर मुकदमा चलता है। लेकिन बरी हो जाते हैं। खान साहब देखने में सामान्य आदमी हैं लेकिन मंटो की यही तो सीख है कि किसी सामान्य, नेक और सदाचारी व्यक्ति को वासना से मुक्त नहीं समझना चाहिए। यह अंधी मनोवृत्ति किसी भी व्यक्ति पर किसी भी आयु में आक्रमण कर सकती है।

आयु की बात आयी तो 'डार्लिंग' कहानी देखिए। दंगों के दिनों में रात के अंधेरे में शहर की एक कुरूप आर्टिस्ट स्त्री जिसकी आयु साठ से ऊपर है, सुनसान रास्तों पर अपनी कार ड्राइव करते हुए अचानक एक ऐसे व्यक्ति के हाथ चढ़ जाती है जो किसी स्त्री की तलाश में था। यह पूरा खेल अंधेरे का है जिसमें अंग्रेज़ी कहावत के अनुसार 'तमाम बिल्लियों के रंग मटमैले होते हैं।' वह व्यक्ति उसे सुंदर जवान लड़की ही समझता है और दुनिया जिसे एक बुझा हुआ कोयला समझती थी, वह ज़रा हवा लगने पर दहकता अंगारा बन जाती है। यह कहानी भी हमारे इंद्रिय बोध को गहरे में प्रभावित करती है और सौंदर्य विषयक हमारी अनेक रूढ़ धारणाओं को तोड़ती है।

'ग़ालिब' के शैर 'इश्क़ पर ज़ोर नहीं' पर हमें पूरा यकीन है, लेकिन मंटो इश्क़ के ऐसे-ऐसे दृश्य दिखाता है जो मानवीय जीवन में अविश्वसनीय हैं। उदाहरण

के लिए 'कादिरा कसाई' में एक सुंदर वेश्या, जिस पर अच्छे-भले धनी नौजवान जान छिड़कते हैं, एक ऐसे व्यक्ति पर आसक्त है जो पेशे से कसाई है, कुरूप है और उसके प्रति कठोर व्यवहार करता है। वह उसे ठुकराता है और वह गिड़गिड़ाती है। हम जानते हैं कि जीवन में ऐसा होता है लेकिन विश्वास नहीं होता है। क्यों होता है हम नहीं जानते क्योंकि मानवीय मनोविज्ञान की ऐसी अनेक गुत्थियाँ हैं, जिनके हल हमारे पास नहीं हैं।

'ददुआ पहलवान' भी इस विषय पर सशक्त कहानी है। ददुआ पहलवान बहुत ग़रीब था, बड़ा बेहूदा और अक्खड़। लेकिन इसके बावजूद उसमें ऐसी चंचलता थी कि सलाहू ने उसे देखते ही अपने अंगरक्षक के रूप में पसंद कर लिया। उनकी मित्रता हो गयी। सलाहू स्कूल में पढ़ता था तो शहर का सबसे सुंदर लड़का माना जाता था। उस पर बड़े-बड़े अमरद परस्तों[1] के बीच बड़ी-बड़ी खूंखार लड़ाइयाँ हुई। एक-दो इसी सिलसिले में मारे भी गये।

सलाहू वास्तव में सुंदर था। संपन्न परिवार का बेटा था। पिता की मृत्यु के बाद उसने अपनी जायदाद को हीरामंडी की वेश्याओं पर लुटाना शुरू कर दिया। नायिकाएं अपनी जवान बेटियों को सलाहू की नज़र से छुपा-छुपा कर रखती थीं कि कहीं वे उसके हुस्न के चक्कर में न पड़ जायें। ददुआ को सलाहू से प्रेम था। अमरदपरस्ताना कह लीजिए, लेकिन उसमें वासना का मिश्रण नहीं था क्योंकि ददुआ लँगोट का पक्का था। एक दृष्टि से देखें तो यह ददुआ के प्रेम की कहानी भी है और उसके 'शील' की भी। सलाहू से ददुआ को वैसा ही प्रेम था जैसा कि एक गुलाम को मालिक से होता है। एक बार ददुआ बीमार था और ददुआ सलाहू के साथ नहीं जा सका था और किसी कोठे पर सलाहू का झगड़ा हो गया जहाँ उसके सिर पर चोट आ गयी। जब ददुआ को सूचना मिली तो दीवार से सिर टकरा-टकरा कर लहूलुहान हो गया। इससे आप ददुआ के प्रेम का अनुमान कर सकते हैं।

इसी दौरान हीरामंडी में एक नयी वेश्या अल्मास की सुंदरता चर्चा का विषय बनी हुई थी। सलाहू उस पर मुग्ध हो गया। दो आख़िरी मकान बेचकर पैसा उड़ा दिया। लेकिन वह उसके हाथ न आयी। अब वह उस मकान को गिरवी रख रहा था जिसमें उसकी माँ रह रही थी। कुर्की आयी और नैलिफ़ भी। दस हज़ार का प्रबंध करना था। सलाहू बहुत परेशान था। ददुआ ने कहा, वह धन का प्रबंध कर देगा और दूसरे दिन वह सचमुच में दस हज़ार रुपये ले आया। पूछने पर उसने बताया कि वह अल्मास के पास गया था जो बहुत दिनों से उसे चाहती रही थी।

---

1. बिना दाढ़ी-मूँछ वाले किशोर लड़कों से प्रेम करने वाले।

मानो कि यह रकम उसने देह बेच कर प्राप्त की। ददुआ की आँखों से इस प्रकार आँसू बहने लगे जैसे किसी कुलीन स्त्री का मान हरण हो गया हो, ज़ाहिर है उसे इस बात का खेद भी था कि उसकी प्रेमिका का कौमार्य भंग हो गया। आश्चर्य की बात है कि पूरी कहानी वासना और मनोरंजक क्रीड़ाओं से भरपूर है, लेकिन इसका मूल कथ्य ददुआ का पवित्र और निश्छल प्रेम है।

मंटो के कथाकार की मुख्य विशेषता यह है कि वह अपनी कहानियों में किसी एक दृष्टिकोण का औचित्य सिद्ध करने के बजाए अपनी हर कहानी में एक भिन्न विचार और अनुभव को प्रस्तुत करता है चाहे वह विचार उसकी अन्य कहानियों की अंतर्वस्तु के विपरीत ही क्यों न जाता हो। लारेंस ही मंटो की इस विशेषता की सराहना कर सकता था। मंटो अपनी कहानियों के माध्यम से किसी दार्शनिक या धार्मिक चिंतक की भाँति वैचारिक तर्कशास्त्र गढ़ने की बजाय जीवन को विविधता और अंतर्विरोधों के साथ प्रस्तुत करता है। मानो कि वह बताना चाहता है कि ऐसा भी होता है और वैसा भी होता है। लारेंस के शब्दों में हर चीज़ अपने समय और अपने स्थान पर, अपनी परिस्थितियों में ठीक है और अपने देश-काल की सीमा से बाहर अनुचित है।

शारीरिकता से सम्बंधित कहानियों में मंटो की 'बू' कहानी सर्वोत्तम है। यह मैथुन की कहानी है और यह मैथुन शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक हर दृष्टि से पूर्ण है। यह पुरुष एवं प्रकृति का, धरती और आकाश का मिलन है। सुखद अनुभूति के ये क्षण प्रकृति प्रदत्त हैं। इसमें मानवीय निश्चय और क्रिया का कोई हस्तक्षेप नहीं होता। इसलिए कहानी में लड़का और लड़की दो युवा शरीरों से ज़्यादा अपनी पहचान नहीं रखते। वे चरित्रों में नहीं बदल पाते। मैथुन के इस अनुभव के मूल में सृष्टि की तात्विक शक्तियाँ क्रियाशील होती हैं। तपती हुई धरती पर जब वर्षा की बूंदें गिरती हैं तो धरती से सौंधी-सौंधी सुगंध उठती है। यह सौंधी गंध इत्र की सुगंध से अलग है। धरती की सौंधी गंध का आज तक कोई इत्र नहीं बना सका। घाटन लड़की की देह-गंध आकाश और धरती के मैथुन में कसमसाती धरती की ही गंध है। यही गंध जो न सुगंध है और न दुर्गंध बल्कि केवल गंध है—इस कहानी का केंद्रीय अनुभव है। इस गंध की लहरों पर रणधीर की आत्मा आकाश की ऊँचाइयों तक उड़ान भरती है।

और जब रणधीर का विवाह होता है और इत्र में बसी हुई दुल्हन सेज पर आती है तो वह महसूस करता है कि वह धरती की गंध के अनुभव से कटकर एक कृत्रिम और काल्पनिक जगत में चला आया है। इसमें मन-प्राण को आंदोलित कर देने वाली वह अनुभुति नहीं, जो कि घाटन की देह-गंध में थी।

"अस्ल में रणधीर के दिल-ओ-दिमाग में वह बू बसी हुई थी जो उस घाटन लड़की के जिस्म से बग़ैर किसी बाहरी कोशिश के बाहर निकल रही थी। वह बू हिना के इत्र से कहीं ज़्यादा हल्की-फुल्की और दूर तक पहुँचने वाली थी जिसमें सूँघे जाने की बेचैनी नहीं थी। जो खुद-बखुद नाक के रास्ते से दाखिल होकर अपनी सही मंज़िल पर पहुँच गयी थी।"

'बू' मंटो की बड़ी अच्छी कहानी है। कहानी में स्वाभाविक और कृत्रिम जीवन के विरोधाभास को प्रभावशाली रूप में व्यंजित किया गया है। कहानी में प्रकृति का उन्मेष होता है, बाहर ही नहीं, घाटन के अंतस् में भी। इसी से उसका स्त्रीत्व जाग्रत रहता है। इसी से उसकी देह गंध का आगार बनती है। इस दृष्टि से यह कहानी प्रकृति की संगीतमय स्तुति बन गयी है, समूची काव्यात्मकता के साथ। एक सिद्ध-हस्त शिल्पी की तरह मंटो स्त्री-पुरुष के चारों ओर से सामाजिक एवं नैतिक निषेधों की भारी शिलाओं को तोड़ देता है, ताकि जिस मैथुन को वह प्रस्तुत करना चाहता है, वह अनावृत्त रूप में प्रकट हो सके।

मंटो के आरंभिक दौर की एक कहानी है 'तरक्की-पसंद' जिसे आमतौर पर दो समकालीन साहित्यकारों देवेंद्र सत्यार्थी और राजेंद्र सिंह बेदी पर व्यंग्य समझकर नज़रअंदाज़ किया जाता रहा है। लेकिन कहानी व्यंग्य से ऊपर उठकर हास्य की उस ऊँचाई को छूती है जहाँ पहुँच कर पाठक आदमी की हिमाक़तों पर बिना किसी ईर्ष्या-द्वेष के दिल खोलकर हँस सकता है। इस कहानी में हास्य का आधार वह मानवीय दुर्बलता है जो साहित्यकारों में आम होती है यानी 'सुनाने का मरज़'।

जोगिंदर सिंह को कहानी लेखन के क्षेत्र में नयी-नयी सफलता मिली और वह बहुत खुश है। जब अच्छे-अच्छे लिखने वाले उसकी प्रशंसा करते हैं तो वह फूला नहीं समाता। हरेंद्रनाथ त्रिपाठी को वह अपने घर अतिथि बनाता है जो स्वयं एक बड़ा लेखक और कथाकार है। त्रिपाठी अतिथि बन कर आता है और चिपक कर रह जाता है। उसे सुनाने का रोग है और वह सुबह-दोपहर-शाम एक के बाद एक कहानियाँ उसे सुनाता जाता है। और बेचारे जोगिंदर सिंह का जीना दूभर कर देता है। जोगिंदर सिंह अपनी पत्नी से मिलने तक को तरस जाता है। वह स्वयं अपने घर में अपनी पत्नी से मिलने के लिए गुप्त षडयंत्र रचता है। रात गये वह देर से आता है। हल्के से दरवाज़े पर दस्तक देता है, किवाड़ खुलता है। लेकिन उसकी पत्नी की बजाय त्रिपाठी सामने खड़ा होता है। "तुम जल्दी आ गये। चलो यह भी अच्छा हुआ। मैंने अभी-अभी एक कहानी पूरी की है। आओ सुनो !"

यह कहानी बड़े बनाव और सधाव के साथ लिखी गयी है। इसमें किसी कथाकार की कहानी कला पर कोई व्यंग्य नहीं है जो कि इस प्रकार की कहानियों में प्रायः विद्यमान होता है। कहानियाँ चाहे कितनी अच्छी हों, उन्हें कसरत से सुनाया जाय तो तबीयत ऊब जाती है। त्रिपाठी से घृणा किये बिना पाठक जोगिंदर सिंह की विपदा पर हँसता है। एक कहानीकार दो कहानीकारों पर लिखता है लेकिन कहानी के बीच में कहीं साहित्य नहीं आता। अर्थात् कहानी में साहित्य-कर्म से नहीं जीवन-शैली से हास्य की सृष्टि हुई है। इसीलिए हम कहानी में व्यंग्य और कटाक्ष के बजाय विशुद्ध मनोविनोद की अनुभूति करते हैं। मंटो हर घटना का वर्णन बड़ी सहजता और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से करता है। 'तरक्की पसंद' कहानी को मैं मंटो की अच्छी रचनाओं में शुमार करता हूँ लेकिन हम लोग मंटो के यहाँ शरीरवाद और उत्तेजनामूलकता को देखने के इतने अभ्यस्त हो गये हैं कि सहज सौंदर्य को सराहने वाला आलोचनात्मक विवेक खो बैठे हैं।

'बाँझ' मंटो की श्रेष्ठ कहानियों में से है। इस कहानी की विशेषता यह है कि इसमें अविश्वसनीय को विश्वसनीय रूप में प्रस्तुत किया गया है। दिवास्वप्न हम सब देखते हैं। वे उतने ही स्वाभाविक हैं जितने कि रात के सपने। दोनों का काम तनाव कम करना और अभावों की क्षतिपूर्ति करना है। कुछ लोग कम सपने देखते हैं, कुछ लोग ज़्यादा। इनमें से कुछ लोग ऐसे होते हैं जो इन सपनों को वास्तविकता समझ लेते हैं। उनका जीवन की वास्तविकता से सम्बंध टूट जाता है और वे सपनों की दुनिया में ही रहते हैं। नईम एक ऐसा ही युवक है। वह एक लड़की से झूठे प्रेम को सच समझ बैठता है। इस कहानी में उसने इतने गहरे रंग भरे हैं कि उसका दिवास्वप्न उसे सच प्रतीत होने लगता है। दिवास्वप्न की आदत एक प्रकार से मानसिक रोग बन चुकी है।

मंटो ने शुरू में ही इस युवक की एक आदत को हमारे मनस्पटल पर अंकित कर दिया है। वह झूठ बोलता है। थोड़ा बहुत झूठ हम सब बोलते हैं, जैसे कि थोड़े-बहुत दिवास्वप्न हम सभी देखते हैं। यदि किसी बड़े आदमी या साहित्यकार के साथ मामूली परिचय है तो हम निस्संकोच भाव से कह देते हैं कि इस व्यक्ति से हमारे गहरे सम्बंध हैं। इससे हमारे अहं की तुष्टि होती है और इस तुष्टि में सुख मिलने लगता है। यहाँ झूठ और सच निरपेक्ष बन जाते हैं और बातों के ज़रिए अहं की तुष्टि में आनंद आने लगता है। क्योंकि बातें बातें ही होती हैं, उनसे किसी अनिष्ट की आशंका नहीं होती, तो न केवल यह कि आदमी झूठ को सच की तरह बोलता है बल्कि अपने झूठ को स्वयं भी सच मानने लगता है। यह स्वयं के साथ छल करने वाला आदमी जब दिवास्वप्न को सच के रूप में प्रस्तुत करता है तो स्वप्न जगत एक वास्तविक जगत में बदल जाता है।

तीसरा तत्व जो इस कहानी के निर्माण में महत्व रखता है, वह बांझपन है। जिस प्रकार कुछ स्त्रियां बच्चे के मामले में बांझ होती हैं, उसी प्रकार कुछ पुरुष प्रेम के मामले में बांझ होते हैं। उनके मन में प्रेम की इच्छा होती है, लेकिन यह इच्छा पूरी नहीं होती। बांझ स्त्री के अभावों का अनुमान इसी से किया जा सकता है कि वह एक बेटे या बेटी के लिए दुआएँ मांगती है, ईश्वर से याचना करती है, जब वहाँ से कुछ नहीं मिलता तो टोटकों का मार्ग अपनाती है, श्मशानों से राख लाती है, कई रातें जाग-जाग कर साधुओं के बताये मंत्र पढ़ती है, मन्नतें मानती है, चढ़ावे चढ़ाती है तो उस आदमी की भी यही हालत होगी, जो प्रेम के मामले में बांझ हो। हम बांझ स्त्री की भाँति ही इस पुरुष की मनोदशा का भी अनुमान नहीं कर सकते।

इस अविश्वसनीय कहानी को विश्वसनीय बनाने के लिए मंटो इन तीन बिंदुओं पर बल देता है। अब हम समझ सकते हैं कि दिवास्वप्न, झूठ और बांझपन के शिकार नईम के लिए अपनी मनगढ़ंत कहानी को सच मान लेना कितना आसान था। जिस फ़र्ज़ी डिप्टी साहब की फ़र्जी लड़की से उसे फ़र्जी प्रेम था, वह मर जाती है। उसकी मृत्यु के बाद नईम जीना नहीं चाहता और एक पत्र द्वारा वह बताता है कि यह पत्र जब मंटो को मिलेगा, उस समय तक वह अपनी जुहरा के पास जा चुका होगा।

'बांझ' एक विचित्र और अत्यंत सुंदर कहानी है जिसे सिर्फ़ मंटो लिख सकता था। इसी दौर की दो और अच्छी कहानियाँ हैं 'मेरा नाम राधा है' और 'बाबू गोपी नाथ'।

'मेरा नाम राधा है' का केंद्रीय पात्र राजकिशोर है जो भारतीय फ़िल्मों का सुंदर और लोकप्रिय अभिनेता है। कहानी उसके आंतरिक और बाह्य जीवन के विरोधाभास का मनोवैज्ञानिक अध्ययन है। कहानीकार की कला भ्रम और वास्वविकता के बीच अंतर करने का सर्वोत्तम माध्यम है। और मंटो ने इस माध्यम का प्रयोग बड़ी कुशलता के साथ किया है। इसलिए उसने राजकिशोर के व्यक्तित्व के बाह्य पक्ष को, उसकी सुंदर देहयष्टि को बड़ी सच्चाई के साथ प्रस्तुत किया है। मंटो कहानी में इस बात के प्रति सचेत रहा है कि वह राजकिशोर के प्रति अपनी घृणा व्यक्त न होने दे। उसने अपने आपको भला-बुरा भी कहा है कि "भई तुम बड़े ही वाहियात आदमी हो कि ऐसे अच्छे आदमी को जिसे सारी दुनिया अच्छा कहती है और जिसे लेकर तुम्हें कोई शिकायत भी नहीं, क्यों बेकार शक की नज़रों से देखते हो ? यदि एक आदमी अपना सुडौल बदन बार-बार देखता है तो यह कौन-सी बुरी बात है ? तुम्हारा बदन भी अगर खूबसूरत होता तो बहुत मुमकिन है तुम भी यही हरकत करते।"

राजकिशोर जैसे व्यक्ति के चरित्र निरूपण का इससे अच्छा ढंग नहीं हो सकता था। उसके बाह्य व्यक्तित्व के सामने तुच्छ शरीर को स्वीकार कर लिया जाये और फिर राजकिशोर को देखकर जो उलझन, जो संदेह उत्पन्न होते हैं कि सब कुछ ठीक नहीं है। राज बन रहा है। राज का जीवन नितांत काल्पनिक है। उसकी उलझन का मूल कारण ज्ञात किया जाये तो यह कहानी एक व्यंग्यात्मक रेखाचित्र की बजाय मनोवैज्ञानिक यथार्थ का चित्र प्रतीत होती है।

मंटो राजकिशोर के जीवन की वायवीयता को अनुभव कर सकता है, लेकिन उसके अंतस् की पहचान करना उसके अनुमान से बाहर है। यह काम नीलम करती है, जो फ़िल्म में खलनायिका की भूमिका अदा करने आती है।

राजकिशोर के चरित्र की पवित्रता के क़ायल न सिर्फ़ स्टूडियो के प्रोड्यूसर, दूसरे अभिनेता और आम कर्मचारी थे बल्कि नागपाड़ा के वे पनवाड़ी भी थे जो उसकी पूजा करते थे क्योंकि वह लंगोट का पक्का था। विधवाओं की सहायता करता था। अपनी निष्ठुर सौतेली माँ के पास हर दिन जाता और उसके चरण छूता था और पिता के सामने हाथ जोड़कर खड़ा होता था और उनकी आज्ञा का पालन करता था। उसे देखकर मंटो को जो उलझन हुई वह यह थी कि स्वस्थ होना बड़ी अच्छी चीज है, मगर अपनी सेहत को बीमारी बनाकर दूसरों पर थोपना दूसरी चीज़ है। "खूबसूरती मेरे नज़दीक वह खूबसूरती है जिसकी दूसरे बुलंद आवाज़ में नहीं बल्कि दिल ही दिल में तारीफ़ करें।" राजकिशोर खादी पहनता था और पक्का कांग्रेसी था लेकिन मंटो को हमेशा इस बात की खटक रही कि उसे अपने वतन से उतना प्यार नहीं था जितना कि उसे अपने 'स्व' से था। वह सब अभिनेत्रियों को बहन कह कर पुकारता था और वे भी उसे भाई कहती थीं। मंटो सोचता कि ये सम्बंध बनाने की ऐसी ज़रूरत ही क्या है ?

इस स्थिति में कहानी में नीलम का प्रवेश होता है जो बनारस की एक वेश्या-पुत्री है। उसका असली नाम राधा है। वह कहती है, "यह इतना प्यारा नाम है कि फ़िल्म में इस्तेमाल नहीं करना चाहिए।" अर्थात् खलनायिका की भूमिका निभाने के लिए नीलम नाम उपयुक्त है। राधा अपने मूल व्यक्तित्व को अपनी भूमिका के साथ गड्डमड्ड नहीं करती। इसीलिए उसे दिखावे की कोई बात पसंद नहीं। अतएव राज किशोर जब उसे बहन कहकर पुकारता है तो वह सबके बीच ऊँची आवाज़ में कह देती है कि आप मुझे बहन न कहिए। जब फ़िल्म की शूटिंग के दौरान राजकिशोर उसके हाथ का चुम्बन लेने के बजाय अपना हाथ चूमता है तो पवित्रता के इस दिखावे में उसे अपने स्त्रीत्व का अपमान महसूस होता है। जब नीलम बीमार पड़ती है तो राजकिशोर अपनी पत्नी के साथ उसके स्वास्थ्य की शुभकामना हेतु आता है और अपना बग़ली थैला जानबूझ कर भूल जाता है।

थैला लेने के लिए दूसरी बार अकेले में आता है तो नीलम उससे भिड़ जाती है। नीलम को उसका शरीर सचमुच में सुंदर लगता है जो कि उसके स्त्री होने की सच्चाई है। लेकिन राजकिशोर नीलम के चुम्बन की ऊष्मा को सहन नहीं कर पाता और एक निढाल स्त्री की भाँति ठंडा हो जाता है। नीलम के मन में एकदम घृणा पैदा हो जाती है। वह पूरे आवेश में उसकी ओर देखती है। उसे घर की हर चीज़ कृत्रिम दिखाई देती है। वह बाहर निकल जाती है। राजकिशोर का यह समूचा प्रदर्शन एक ऐसे पुरुष का था जो किसी स्त्री का पुरुष नहीं था।

'बाबू गोपीनाथ' राजकिशोर से बिल्कुल दूसरी क़िस्म का आदमी है। वह स्वभाव से दोहरा चरित्र नहीं जी सकता। उसमें कोई दिखावा नहीं। उसे वेश्याओं, फ़कीरों और कुंजड़ों की संगत अच्छी लगती है क्योंकि उनके बीच आदमी जैसा है वैसा जी सकता है। चेहरे का मुखौटा तो उसी समय जलकर भस्म हो गया जब बाबू गोपीनाथ ने उच्छृंखलतापूर्ण जीवन शैली अपना ली थी। लेकिन इस उच्छृंखलता में भी एक भलमनसाहत का रंग है। वह उदारहृदय है। वह एक धनवान वणिक का बेटा है। पिता की मृत्यु के बाद उसके पास अपार संपत्ति आती है जिसे वह वेश्यालयों में दोनों हाथों से लुटा देता है। वह जानता है कि उसकी संपत्ति एक दिन समाप्त हो जायेगी। तब वह कोठा छोड़कर पीर के मज़ार पर चला जायेगा। वह कहता है कि "ज़िंदगी का कोठा और पीर का मज़ार—इन दोनों जगहों पर ज़मीन से लेकर आसमान तक धोखा ही धोखा है और जो आदमी खुद को धोखा देना चाहता है उसके लिए इनसे अच्छा मुक़ाम और क्या हो सकता है ?" बाबू गोपीनाथ स्वयं को इसलिए धोखा देता है कि यथार्थ के धरातल पर जीने के लिए जिस दुमुँहेपन और छल की ज़रूरत है वह उसके वश की बात नहीं है। बाबू गोपीनाथ परछाईं नहीं बल्कि भरा-पूरा आदमी है जो अनुभूति और अनुभव के घरातल पर जीना चाहता है। रंडी के कोठे और पीर के मज़ार के अपने-अपने परिवेश हैं, ये परिवेश उस व्यक्ति के मन को भाते हैं जो अनुभूति के धरातल पर जीना चाहता है।

लेकिन फ़िलहाल बाबू गोपीनाथ की एक बड़ी समस्या ज़ीनत है जो कि उसकी रखैल है। ज़ीनत एक अल्हड़ और नासमझ लड़की है। वह उन चतुराइयों से परिचित नहीं है जो उसके पेशे की औरतों को जानना चाहिए। बाबू गोपीनाथ उसके जीवन का अवलम्ब बन नहीं सकता क्योंकि वह घरेलू टाइप नहीं। वह ज़ीनत को अपने अर्थहीन और पतित जीवन में शामिल नहीं करना चाहता। संपत्ति के नष्ट होने के बाद उसके पास यही जीवन बच रहेगा। उसे डर है कि वेश्यावृत्ति के लिए ज़ीनत बहुत भोली और अल्हड़ है और दूसरे लोग उसका शोषण करेंगे। वह बहुत कोशिश करता है कि उसे चालाक बनाये, लेकिन नाकाम रहता है। अब एक ही रास्ता रहता है कि कोई अच्छा-सा आदमी देखकर ज़ीनत की उससे शादी

कर दी जाये। अंततः एक ऐसा आदमी मिलता है और शादी संपन्न होती है। बाबू गोपीनाथ बहुत प्रसन्न है। वह मेहमानों को खाना खिलाता है, उनके हाथ धुलाता है। ज़ीनत के सिर पर हाथ रखकर कहता है। "ईश्वर तुम्हें प्रसन्न रखे," इस अवसर पर बाबू गोपीनाथ एक ऐसा पिता लगता है जो बेटी ब्याह रहा हो।

'बाबू गोपीनाथ' मंटो की बहुत ही चर्चित कहानी है। उर्दू कहानी के बहुत कम चरित्र इतने लोकप्रिय हुए हैं जितना कि बाबू गोपीनाथ। इसका कारण स्पष्ट है। वह ग़ज़ल के प्रेमी का कथात्मक रूप है जिसमें सुरा-सुंदरी के प्रति आसक्ति और फक्कड़पन जैसी विशेषताएँ एक साथ विद्यमान हैं।

'लतिका रानी' व राजकिशोर की तरह कपटी है, न बाबू गोपीनाथ की भाँति शालीन और परोपकारी। वह एक आधुनिक महत्वाकांक्षी और व्यावहारिक स्त्री का बहुत ही अच्छा टाइप है। 'बाबू गोपीनाथ' की तरह इस कहानी में भी कथन भंगिमा की तीक्ष्णता, वाक्यों की सानुरूपता, शब्दलाघव, उपयुक्त उपमाएँ, मनोवैज्ञानिक गहराई, सांकेतिकता और प्रवाह जैसी सभी विशेषताएँ अंतर्निहित हैं। इस कहानी के कलात्मक प्रयोग देखने योग्य हैं। पूरी कहानी विरोधाभासों पर टिकी हुई है। कहानी के आरंभ में लतिका रानी की फ़िल्मी इमेज को बहुत अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया गया है। यह एक भोली-भाली लड़की की इमेज है। चमकीली दुनिया से बहुत दूर एक टूटा झोंपड़ा ही उसकी सारी दुनिया थी। किसी किसान की बेटी, किसी मज़दूर की बेटी, किसी काँटा बदलने वाले की बेटी। बस तमाशबीन इस इमेज के दीवाने थे।

लेकिन लतिका रानी पेरिस, लंदन और बम्बई थी चमकीली दुनिया में रहती है। बहुत महत्वाकांक्षी, साहसी, विवेकशील और व्यावहारिक स्त्री है। "अपनी फ़िल्मी ज़िंदगी के दौरान में उसने शुहरत के साथ-साथ दौलत भी पैदा की। इस नपे-तुले अंदाज़ में गोया अपनी जेब में आने वाली हर पाई की आमद का इल्म था और शुहरत के तमाम ज़ीने भी उसने इसी अंदाज़ में तय किये कि हर आने वाले ज़ीने की तरफ़ उसका क़दम बड़े भरोसे से उठा हुआ था।"

अतएव यूरोप में वह अपने मद्रासी प्रेमी को, जो डॉक्टरी पढ़ रहा था, छोड़कर अधेड़ उम्र के प्रफुल्ल राय से पैंगे बढ़ाती है क्योंकि वह सपने बुनता था और सिगरेट के धुएँ में वह ऐसे क़िले बनाता था जिसकी न बुनियादें होती थीं, न दीवारें। दूसरा विरोधाभास प्रफुल्ल राय के स्वप्न और लतिका रानी के यथार्थ का है। लतिका रानी ने लोगों की औपचारिक प्रशंसा के बावजूद अपने बारे में यह निर्णय कर लिया था कि वह एक साधारण युवती है जिसमें न मोहकता है, न आकर्षण। उसने कई बार महसूस किया कि वह अधूरी-सी है। उसमें बहुत-सी कमियाँ हैं जो पूरी तो हो सकती है। मगर बड़ी छान-बीन के बाद। प्रफुल्ल राय के सामने वह महसूस

करती कि वह सिगरेट के धुएँ में उसके समूचे शरीर को बिखेर कर उसके अंगों को अपने ढंग से संवारने में व्यस्त रहता है। लतिका रानी प्रबुद्ध थी, वह समझ गयी थी कि प्रफल्ल राय उसे एक ऐसी इमेज दे सकता है जो उसके साधारण रूप-सौंदर्य की क्षतिपूर्ति करके उसे प्रगति के सोपान पर लाकर खड़ा कर सकती है।

इस ज़ीने की सीढ़ियाँ चढ़ने के लिए वह अपने स्त्रीत्व का प्रयोग करती है—बूढ़े अंग्रेज़ नाइट को, फ़िल्म कंपनी में पूँजी लगाने वाले मारवाड़ियों को प्रसन्न करने के लिए। लेकिन वह जानती है कि एक बार कंपनी चल पड़ी तो वे मारवाड़ी सेठ उसकी सूरत को तरस जायेंगे।

पूरी कहानी में लतिका रानी का मस्तिष्क सक्रिय रहता है, लेकिन शरीर निष्क्रिय रहता है। राजकिशोर हो या लतिका रानी दोनों झूठे हैं क्योंकि दोनों का शरीर सच नहीं बोलता। इसके विपरीत बाबू गोपी नाथ शरीर की सच्चाई में जीता है। लतिका रानी यह जान चुकी थी कि वह ताप जो प्रफुल्ल राय की शून्य में देखने वाली आँखों में था, उसकी बाहों में नहीं था, ये बाहें जीवन के स्पंदन से रिक्त थीं। लेकिन इसके बावजूद वह संतुष्ट थी।

जब वह एक नये सुंदर युवा अभिनेता के साथ भाग जाती है तो उसे पहली बार लगता है कि उसने अपने अंतर्मन की आवाज़ को सुना है। लेकिन पुराना अभिनेता तत्काल उसके इस खयाल को झुठला देता है। वह बताता है कि वह इस नये अभिनेता के साथ इसलिए भागी, कि वह सनसनी फैलाना चाहती थी ताकि लगातार चार फिल्मों में फेल होने के कारण उसकी ख्याति में जो कमी आई है, उसे संभाल सके। वह नये हीरो को इस तरह अपने साथ ले गयी जैसे किसी नौकर को ले जाते हैं।

लतिका के बारे में ये बातें भी होती थीं कि उसके सम्बंध साईस के साथ हैं।

पुराना हीरो कहता, "लतिका जैसी औरत इस किस्म के सम्बंध सिर्फ़ अदना क़िस्म के नौकर से ही बना सकती है जो उसके इशारे पर आये और इशारे पर चला जाये, जिसकी गर्दन उसके अहसान तले दबी रहे। अगर उसमें इश्क-मुहब्बत करने की समझ होती तो वह नये हीरो के साथ भाग कर वापस न आती।"

ज़ाहिर है कि लतिका ने प्रफुल्ल राय से प्रेम नहीं किया, सिर्फ़ उसका इस्तेमाल किया है। अपने अंतिम दिनों में प्रफुल्ल राय उसे बहुत गालियाँ देता लेकिन वह चुपचाप सुन लेती। लतिका ने यह अनुमान भी कर लिया था कि प्रफुल्ल राय अब बहुत दिनों तक टिकेगा नहीं। उसने स्टूडियों के दर्ज़ी से एक काला ब्लाउज़ सिलवाया। लोग हैरान थे कि यह कौन-सी फ़िल्म के लिए है। प्रफुल्ल

राय जब मर गया तो उसकी अंत्येष्टि के दिन वह लम्बी-लम्बी आस्तीनों वाला काला ब्लाउज़ और काली साड़ी पहन कर आयी। पुराने हीरो ने उसे घृणा से देखकर कहा, "कम्चख़्त को मालूम था कि यह सीन कब शूट होने वाला है।"

मंटो की एक आरंभिक कहानी है 'आम'। मुंशी करीम बख़्श की पहुँच बड़े अफ़सरों तक थी क्योंकि वह हर मौसम में उनके यहाँ आम की टोकरियाँ पहुँचाया करता था। वह मितभाषी और उच्चाशय व्यक्ति था जिसे दूसरों की सेवा में आनंद आता था। रिटायर होने के बाद उसकी आय बहुत कम हो गयी थी। आम भेजने की रुचि में कोई कमी नहीं आयी थी, जून के महीने में अपने छोटे-से घर में उसे भीषण गर्मी में झुलसना पड़ा क्योंकि गुसलख़ाने की ठंडक में, जहाँ उसे दोपहर में सोने की आदत थी, आम के टोकरे रखे हुए थे। उसकी तबीयत ख़राब हो गयी। लोग जमा हो गये। तीन-चार आदमी दौड़ाये गये लेकिन मुंशी करीम बख़्श अंतिम सांसें लेने लगा। उसने सब लोगों से बाहर जाने को कहा क्योंकि उसे अपनी पत्नी से कुछ कहना था। रोती हुई पत्नी और बेटी को बुलाकर उसने कहा कि आम के टोकरे आज शाम तक डिप्टी साहब और छोटे जज साहब की कोठी पर ज़रूर पहुँच जायें और यह राज़ किसी को मालूम न हो कि हम ये आम बाज़ार से ख़रीदकर लोगों को भेजते थे। कोई पूछे तो यही कहना कि दीनानगर में हमारे बाग़ हैं। और मैं मर जाऊँ तो मेरे मरने की इत्तिला उन्हें भेज देना। कुछ क्षणों बाद मुंशी करीम बख़्श मर गया। लेकिन डिप्टी साहब और छोटे जजसाहब अपरिहार्य विवशताओं के कारण जनाज़े में शामिल न हो सके।

यह कहानी बड़े लोगों पर व्यंग्य तो है ही लेकिन उस छोटे आदमी के पाखंड का भी अच्छा चित्रण करता है जिसे बड़ों से मिलकर खुशी होती थी। ज़ाहिर है कि यह मुंशी करीम बख़्श के मितभाषी और उच्चाशय व्यक्तित्व का मनोवैज्ञानिक पहलू भी था कि वह अपनी बड़े लोगों को खुश करने की इच्छा को तुष्ट करने के लिए स्वयं से और दूसरों से सच नहीं बोल सकता था। स्वयं कष्ट उठाया, परिवार जनों के मुँह का निवाला छीना और अंततः उन्हीं आम के टोकरों के कारण स्वयं मौत के मुंह का निवाला बना।

यही थीम अपेक्षाकृत अधिक उत्तेजनात्मक रूप में 'इज्ज़त के लिए' कहानी में मिलती है। चूनी लाल को भी शहर के बड़े लोगों से सम्बंध बनाने का बड़ा चाव था। अपने किसी निजी लाभ के लिए नहीं बल्कि अहं की तुष्टि के लिए, ताकि लोग कहेंगे कि इसकी पहुँच कितने ऊपर तक है ! और अपने प्रभाव से वह लोगों के काम भी निकलवा देता था। उसने अपना छोटा-सा सुंदर बंगला बड़े लोगों के लिए पक्का कर रखा था कि जब उनका जी चाहे और जितने दिनों के लिए चाहे वे वहाँ रह सकते थे। और सुरा-सुंदरी आदि उनकी सभी आवश्यकताएँ

पूरी कर दी जाती थीं। चूनी लाल का बाप गिरधारी लाल बड़ा रिश्वत ख़ोर था। लेकिन रिटायर होते ही मकान के सट्टों में सारी पूँजी साफ़ हो गयी। बाप के मरने के बाद चूनी लाल के मन में पुरानी साख को बनाये रखने की इच्छा बलवती हुई। वह जानता था कि प्रकट में वह बड़े लोगों का हमप्याला और हमनिवाला है और अच्छा मेल-जोल रखता है लेकिन वास्तविकता में वह उनसे बहुत दूर था। अलबत्ता उनकी मान-प्रतिष्ठा से उसका वही सम्बंध था जो कि एक मूर्ति से पुजारी का होता है या एक स्वामी से सेवक का होता है।

एक बड़े अफ़सर का शर्मीला बेटा चूनी चाल के दायरे में आ निकला और देखते ही देखते खूब खुल-खेलने लगा। विभाजन के बाद दंगे शुरू हुए। बड़ी संख्या में लड़कियाँ अगवा की जाने लगीं। हरबंस एक लड़की के साथ कमरे में बंद था। फिर वह घबराया हुआ आया कि लड़की का खून बंद नहीं होता। चूनी लाल उस समय रिवाल्वर लिये सोफ़े पर बैठा था। भीतर जाकर देखा तो उसकी बहन विमला थी। वह सोच में पड़ गया कि मामले को कैसे निबटाया जाये जिससे कि इतने बड़े अफ़सर की प्रतिष्ठा पर आंच न आये। उसकी खामोशी को देखकर हरबंस डर गया और चूनी लाल पर रिवाल्वर दाग दी। दूसरे दिन अखबारों में ख़बर थी कि चूनी लाल ने अपनी सगी बहन के साथ मुंह काला किया और बाद में गोली मारकर आत्महत्या कर ली। वह जो दूसरों के सम्मान का इतना ध्यान रखता, । स्वयं एक अपमानजनक मौत मरा क्योंकि उसका समूचा जीवन आडम्बर और आत्मछल पर टिका हुआ था। ध्यान रहे कि कहानी में अप्रत्याशित परिणाम की रोचकता तो है लेकिन अप्रत्याशित परिणाम बदली हुई परिस्थति से सापेक्ष लगता है। इससे यह संकेत उभरता है कि जिन्हें यह भ्रम होता है कि वे परिस्थितियों की वल्गा को मोड़ सकते हैं, अंतत, वे अपनी ही पैदा की गयी परिस्थितियों के शिकार होते हैं।

प्रतिष्ठा जब मात्र आडम्बर होती है, सामाजिक साख क़ायम करने का ज़रिया होती है और आत्मा की अभिव्यक्ति एवं चरित्र की पहचान नहीं होती तो वह एक ऐसा आवरण बन जाती है जिसके पीछे नैतिक पतन की दुर्गंध बसी रहती है। मिथ्या प्रतिष्ठा की थीमा पर मिस्टर मुईनुद्दीन मंटो की बेमिसाल कहानी है।

मिस्टर मुईनुद्दीन कराची के एक धनवान व्यापारी थे। अपनी सुंदर पत्नी जुहरा से उन्होंने बम्बई में बड़े ठसके का इश्क किया था और खानदानी अड़चनों के बावजूद वह उसे ब्याह कर ले आये थे। उनके एक लड़का और एक लड़की थी। लड़का इंगलैंड में शिक्षा प्राप्त कर रहा था और लड़की के लिए उन्होंने एक अंग्रेज़ नर्स मुकर्रर कर रखी थी। मिस्टर मुईनुद्दीन को अपनी पत्नी से अत्यधिक

प्रेम था। स्वभाव से वह मितभाषी और शालीन प्रकृति के व्यक्ति थे। वह जुहरा के प्रति जब अपने प्रेम को व्यक्त करते तो बड़े मद्धम सुरों में।

जब मिस्टर मुईनुद्दीन ने देखा कि जुहरा उनके एक दोस्त मिस्टर अहसन से, जो अधेड़ उम्र के बहुत बड़े मालदार व्यापारी थे, ज़्यादा अपनापन बरत रही है तो उन्हें बड़ी उलझन हुई। लेकिन उनकी मनोवृत्ति एक व्यापारी की थी। मिस्टर अहसन विधुर थे। उनके कोई संतान नहीं थी। कराची में मोतियों के सबसे बड़े व्यापारी थे। करोड़पति। जब मिस्टर मुईनुद्दीन ने जुहरा को यह कहते सुना कि "अहसन साहब ! मैं आपको यक़ीन दिलाती हूँ कि मैं उनसे तलाक़ हासिल कर लूँगी क्योंकि वो मेरी कोई बात नहीं टालते।" तो मुईनुद्दीन बहुत परेशान हुए। वे जुहरा के पास गये और कहा कि "मैं तुम्हें तलाक़ नहीं दूँगा। यह मेरी इज़्ज़त का सवाल है।" जब जुहरा ने कहा कि वह मिस्टर अहसन से वादा कर चुकी है तो मुईनुद्दीन बोले कि कोई दूसरी राह निकाली जा सकती है, "तुम अहसन के साथ रह सकती हों" और जुहरा अहसन के साथ रहने लगी। मिस्टर अहसन एक पति के विलक्षण त्याग और जुहरा के दैहिक सौंदर्य से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने कुछ ही दिनों बाद वसीयत लिखकर अपनी तमाम जायदाद का वारिस जुहरा को बना दिया।

अचानक हृदय गति रुक जाने से अहसन की मृत्यु हो गयी। अदालत के ज़रिए जब जुहरा सारी संपत्ति का क़ब्जा लेकर खुश-खुश घर आयी तो देखा कि मिस्टर मुईनुद्दीन के पास मौलवी किस्म का आदमी बैठा है। मिस्टर मुईनुद्दीन ने जुहरा के हाथ में तलाक़नामा दिया और कहा कि "मुझे अपनी मान-मर्यादा बहुत प्यारी है। जब सोसायटी को यह पता चलेगा कि मिस्टर अहसन तुम्हारे लिए सारी जायदाद छोड़कर मर गया तो क्या-क्या कहानियाँ नहीं गढ़ी जायेंगी।" लेकिन जाते-जाते मिस्टर मुईनुद्दीन ने कहा कि "अगर तुमने इजाज़त दी तो मैं कभी-कभी तुम्हारे पास आया करूंगा।"

हम वेताल की भाँति पूछ सकते हैं कि इन परिस्थतियों में मिस्टर मुईनुद्दीन दूसरा क्या कर सकते थे ? उन्हें जुहरा से प्रेम था, वह उसकी सुंदरता पर मुग्ध थे । जुहरा और अहसन की बढ़ती हुई निकटता को रोक सकते थे। या फिर दिल कड़ा करके उसे तलाक दे सकते थे। पर उन्होंने दिल की बात नहीं सुनी, क्योंकि जैसा कि मंटो ने लिखा है, "उनके दिल-ओ-दिमाग़ के बीच बहुत सा चांदी-सोना ढेर हो चुका था।"

दंगों पर मंटो ने बहुत अच्छी कहानियाँ लिखी हैं। इनमें 'सहाय', 'ठंडा गोश्त', 'गुरमुख सिंह की वसीयत', 'खोल दो' 'शरीफ़न' और 'मूंजैल' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

सहाय वेश्याओं का दलाल है लेकिन वेश्याओं के साथ अत्यंत पवित्र बल्कि पिता की भाँति उसके सम्बंध हैं, ऐसे व्यक्तियों के हृदय में पवित्र और निर्मल भावनाओं का निवास होता है। वहाँ ईर्ष्या और घृणा को कोई स्थान नहीं। दंगों में एक मुसलमान उसकी छुरा मारकर हत्या कर देता है। तब भी वह मरते-मरते मुसलमान वेश्या सुल्ताना के रुपये और ज़ेवर मुमताज़ को दे देता है कि सुल्ताना को पहुँचा दे और उसे कह दे कि वह चली जाये। ख़तरा बहुत बढ़ गया है।" पाकिस्तान जाते समय जब मुमताज़ जहाज़ के छज्जे पर हाथ हिलाता है तो ऐसा लगता है कि वह सहाय की आत्मा को बुला रहा है–हमसफ़र बनाने के लिए। जुगल सिर्फ़ इतना कहता है कि "काश मैं सहाय की रूह होता।" ध्यान रहे कि जुगल ने मुमताज से कहा था कि अगर हमारे मुहल्ले में दंगा शुरू हो जाये तो मुमकिन है, मैं तुम्हें मार डालूँ" जुगल का चाचा दंगे में मारा गया था और वह बहुत क्षुब्ध था। कहानी का नैतिक पक्ष यह है कि सहाय जैसा द्वेष और घृणा से मुक्त हृदय कहाँ से लायें ? चाहे भारत हो या पाकिस्तान–देशों का निर्माण ईंट-पत्थर से नहीं बल्कि ऐसी पवित्र आत्माओं से होता है जिनमें द्वेष और घृणा की छाया तक नहीं होती। काश बड़े नेताओं और उच्चाधिकार प्राप्त लोगों के पास वह दिल होता जो सहाय के पास था।

सहाय की आत्मा यदि पवित्र थी तो 'ठंडा गोश्त' के ईश्वर सिंह की आत्मा पापों में डूबी हुई थी। दंगों में वह जिस लड़की को कंधे पर लाद कर चला था, वह मारे दहशत के मर गयी और ईश्वर सिंह को ख़बर भी न हुई और उसने उसके साथ मुंह काला किया। आदमी समझता तो यही है कि वह हत्या करे या बलात्कार। इन पापों का प्रभाव देर तक नहीं रहता। लेकिन मनुष्य, मनुष्य है पशु नहीं। उसका एक मन है जो उसके अप्राकृतिक कृत्यों के विनाशकारी प्रभावों को ग्रहण करता है और अप्रत्याशित रूप से उसे निष्क्रिय बना देता है। एक मृत लड़की के 'ठंडे गोश्त' से बलात्कार का परिणाम यह होता है कि वह अपना पुरस्त्व खो देता है। कुलवंत कौर समझती है कि कोई दूसरी औरत उसकी ज़िंदगी में आ गयी है और उसे क़त्ल कर देती है। दंगों में ईश्वर सिंह ने अनगिनत लोगों की हत्या की थी लेकिन उसके पेट का पानी नहीं हिला था क्योंकि हत्या मनुष्य के स्वभाव के विरुद्ध नहीं है। हिंसा मनुष्य के स्वभाव में है और प्रत्येक मनुष्य में एक संभावित हत्यारा छुपा रहता है। युद्ध और दंगों में यही मार-धाड़ करने वाला व्यक्ति मनुष्यता के स्नेह आवरण से बाहर निकल आता है। लेकिन ईश्वर सिंह ने जो कुकृत्य किया वह मानवीय प्रकृति के विरुद्ध था। प्रकृति के विसद्ध यह अपराध करने के बाद यदि वह नार्मल बना रहता तो इसका मतलब था कि मनुष्य कुछ भी कर ले उसके करतूतों का उस पर कुछ प्रभाव नहीं होगा। यह बात जन्मजात और अभ्यस्त

अपराधियों के संदर्भ में सच हो सकती है, नार्मल व्यक्ति के संदर्भ में नहीं। अतएव अपने कुकर्म के परिणामस्वरूप ईश्वर सिंह जो कुछ पहले था, वह नहीं रहता। यह अपराध का ऐसा दंड नहीं जो प्रायश्चित से दूर हो, ईश्वरसिंह की मुक्ति उसकी मृत्यु में ही है। उसकी मरी हुई आत्मा उसके जीवित राव को कब तक उठाये फिरती। लेकिन कहानी का मनोवैज्ञानिक पक्ष यह है कि उसके पुंसत्व की मृत्यु उसकी मनुष्यता का प्रतीक है। एक मनुष्य के रूप में उसका मन अप्राकृतिक कृत्य का आघात सहन नहीं कर सकता और वह नपुंसक हो जाता है उसे नपुंसक के रूप में जीने की तुलना में एक इंसान के रूप में मरना श्रेयस्कर लगता है इसलिए वह कुलवंत कौर को धन्यवाद देता है। उसकी कृपाण से उसका गर्म-गर्म खून बहा, जो जीवन का प्रतीक के जबकि उसका पार्थिव शरीर मृत्यु ही मुत्यु था।

इस कहानी की संवेदनात्मक गहराई तक हमारी आलोचना आज तक नहीं पहुँच सकी है।

'ठंडा ग़ोश्त' पर मुक़दमा चला और 'खोल दो' पर भी। लेकिन मंटो की ये दोनों सशक्त कहानियाँ हैं। 'खोल दो' तो बड़ी कारीगरी से बनायी हुई एक छोटी-सी रिवाल्वर की भाँति है जिसे हम खिलौने के तौर पर देखते हैं कि यकायक उसमें से निकली हुई गोली काम कर जाती है। पाँच-छः पृष्ठ की इस छोटी-सी कहानी ने लोगों के मन को जितना आंदोलित किया है उतना किसी अन्य कहानी या कविता ने नहीं। इस कहानी में प्रत्याशित परिणाम की तकनीक से एक ही समय में ऐसी वेदना, भयावहता, विकलता और थरथराहट उत्पन्न की गयी है जिसकी मिसाल शायद विश्वकथा साहित्य में कहीं भी दिखाई न दे। कहानी का परिणाम एक ऐसा कोड़ा है जिसकी चोट से हमारे भाव जैसे-जैसे पीछे की ओर दौड़ने लगते हैं, वैसे-वैसे सकीना पर स्वयं उसकी जाति के रज़ाकारों द्वारा किये गये अत्याचारों से हमारा जी बैठता जाता है। इस कहानी में सकीना के साथ रजाकारों द्वारा बार-बार किये गये बर्बरतापूर्ण बलात्कार का कोई ज़िक्र नहीं है जिसके कारण वह एक लाश बन गयी थी। लेकिन कहानी के अंत में जब डॉक्टर अधमरी सकीना की नब्ज़ टटोलकर कहता है कि 'खिड़की खोल दो' और "सकीना के मुर्दा जिस्म में जुंबिश पैदा हुई। बेजान हाथों से उसने इज़ारबंद खोला और शलवार नीचे सरका दी।" तो बलात्कार के जो दृश्य कहानी में नहीं उभारे गये हैं; वे एक ही क्षण में हमारी आँखों के सामने घूम जाते हैं और हम अजीब बेबसी और सन्नाटे की हालत में जो कुछ हो गया, उसे देखते रहते हैं। हम ऐसे शॉक में चले जाते हैं कि एक क्षण के लिए उसके बूढ़े बाप को भी भूल जाते हैं, जो हर्षातिरेक में चिल्ला उठता है कि "मेरी बेटी ज़िंदा है" और यह भी नहीं देखता कि बदन की जिस हरकत के सबब वह जिंदा नज़र आती है उसे ग़ैरत मंद बाप

दूसरे हालात में कभी बर्दाश्त न करता। हम उस डॉक्टर को भी भूल जाते हैं जिसके लिए नग्न शरीर देखना रोज़ का काम है। लेकिन यहाँ वह सकीना की शारीरिक चेष्टा देखकर पसीना-पसीना हो जाता है।

यह तो कहानी की परिणति थी। शेष कहानी यद्यपि बहुत संक्षिप्त है लेकिन इसमें देश का विभाजन, दंगे, मुहाजिरों के काफिले, कैम्प, में होने वाली दौड़-धूप, रज़ाकारों का सकीना को पाना लेकिन उसे अपने ही पास रखना, रज़ाकारों से मिलने पर बाप का सकीना के बारे में पूछना और उनका जवाब देना कि मिल जायेगी और बाप का उन्हें दुआएं देना जैसी अनेक व्यंग्यात्मक और अर्थपूर्ण घटनाओं का समावेश है। मंटो ने सकीना की सुंदरता का चित्र हमारे मनस्पटल पर अंकित कर दिया है, लेकिन बाप के माध्यम से। रूपवती सकीना को हम एक बार देखते भी हैं लेकिन असहाय और भयभीत दृष्टि से । उसकी सुंदरता पर रज़ारों की दृष्टि टिक जाती है लेकिन हम तो उसकी बेबसी देखकर दिल थाम लेते हैं। मंटो ने यह कहानी ऐसी कुशलता के साथ लिखी है कि हमारी आँखों में आँसू और मन में करुणा का भाव उत्पन्न नहीं होने देता।

वह भयानकता जिसका वर्णन तक उसने नहीं किया है—उसे पथराई आँखों से देखने का क्या अर्थ है, यह हम इस कहानी से जान लेते हैं।

'गुरमुख सिंह की वसीयत' एक अन्य श्रेष्ठ-कहानी है जो दंगों पर लिखी गयी है। गुरमुख सिंह हर साल ईद को मियां अब्दुल हई के घर सिवैयां भिजवाता है। गुरमुख सिंह मर गया है लेकिन अपने बेटे को वसीयत कर गया है कि भविष्य में हर साल मियां साहब के यहाँ सिवैयां ज़रूर पहुँचती रहें। लेकिन इस साल की ईद विभाजन के बाद हो रहे दंगों की भड़कती हुई आग के बीच आयी है। अब्दुल हई को पक्षाघात हो गया है। घर में एक सहमी हुई जवान बेटी और भयभीत छोटा लड़का है। और शहर में चारों ओर आग के अंगारे, धुआँ, गोलियों की आवाज़ें और बम के धमाके हैं। लेकिन संतोख सिंह अपने पिता की वसीयत पूरी करता है। सिवैयां देकर जब वह सड़क पर वापस आता है तो ठाठा बांधे चार आदमी हाथ में हथियार और जलती मशालें लेकर खड़े होते हैं। संतोख सिंह ने उन्हें समझाया था कि वह जज साहब के यहाँ सिवैयें पहुँचा दे फिर उनका जो जी चाहे करें। संतोष सिंह जब लौटता है तो वे कहते हैं "तो कर दें मामला ठंडा जज साहब का" और संतोख सिंह यह कह कर चला जाता है, "हाँ, जैसी तुम्हारी मर्ज़ी।" और कहानी खत्म हो जाती है।

जिस प्रकार 'खोल दो' में पाठक की कल्पना पीछे की ओर दौड़ती है और उन भयावह घटनाओं के चित्र उसके मन में घूम जाते हैं जिनसे सकीना गुजरी है और कहानी में जिनका वर्णन नहीं किया गया है उसी प्रकार इस कहानी में

पाठक की कल्पना आगे की ओर दौड़ती है और पाठक उन भीषण अत्याचारों की कल्पना से भरा जाता है जिनका कहानी में वर्णन नहीं किया गया है लेकिन जो चार ठाठा बांधे हुए आदमियों ने जज साहब, उनकी जवान लड़की और छोटे बेटे पर किये होंगे। भयावह घटनाओं का वर्णन करके भयावहता का प्रभाव उत्पन्न करना श्रेष्ठ कला का गुण है।

लेकिन 'शरीफ़न' एक ऐसी कहानी है जिसमें दंगों की रक्तरंजित घटनाओं का वर्णन किया गया है। लेकिन यह घटना-निरूपण इतना वस्तुनिष्ठ है कि पाठक को भावुक नहीं बनाता। यही मंटो का अभीष्ट भी है। मंटो भयावहता का भाव पाठक के मन में नहीं, बल्कि चरित्र में उत्पन्न करना चाहता था। इसलिए उद्वेगकारी घटनाओं का वर्णन इस रूप में किया गया है कि पाठक उन्हें ठंडे मन से देखता है। चारों ओर मारधाड़ का बाज़ार गर्म है। क़ासिम जिसकी पिंडली में गोली लगी है, जब अपने घर में प्रवेश करता है तो देखता है कि पत्नी मरी पड़ी है और बेटी का निर्वस्त्र शव पड़ा है। वह गंड़ासा लेकर बाहर निकल गया। रास्ते में दो-चार आदमियों को मारा। एक घर में घुसकर एक भयभीत लड़की से बलात्कार किया। जब बाद में उसने उस लड़की के निर्वस्त्र शव की ओर देखा तो उसे अपनी बेटी शरीफ़न याद आ गयी। क़ासिम ने उसके शरीर पर कम्बल डाल दिया। इतने में एक आदमी तलवार लेकर अंदर आया और उससे पूछा, "कौन हो तुम ? क़ासिम ने कांपते हुए हाथ से फ़र्श पर पड़े हुए कम्बल की ओर संकेत किया और खोखली आवाज़ में सिर्फ इतना कहा "शरीफ़न"। हथियारबंद आदमी ने कम्बल हटाया। निर्वस्त्र शव देखकर पहले वह काँपा और फिर आँखें बंद कर लीं तलवार हाथ से गिर पड़ी और वह 'विमला विमला' कहता लड़खड़ाते हुए क़दमों से बाहर निकल गया।

यूनानी ट्रेजेडी की भाँति यह संक्षिप्त कहानी बताती है कि हिंसा और प्रतिशोध का एक चक्र होता है जो कभी समाप्त नहीं होता। केवल क्षमा, अहिंसा और सहिष्णुता के द्वारा ही मनुष्य हिंसा के इस चक्र से निकल सकता है। दूसरा बिंदु लड़कियों की निर्वस्त्र देह की समानता का है। निर्वस्त्रता में सब शरीर एक-से हैं। शरीफ़न और विमला के उभरते हुए शरीरों में कोई अंतर नहीं। यह एक वास्तविकता है जो हमेशा आदमी की आँख से ढंक कर ओझल हो जाती है। मिथ्या वास्तविकताओं के आवरण ने न केवल मनुष्य और मनुष्य के बीच अलगाव पैदा किया है बल्कि विद्वेष की ऐसी दीवारें भी खड़ी की हैं कि हम यथार्थ का साक्षात्कार ही नहीं कर पाते।

दंगों के विषय पर 'मूज़ैल' मंटो की एक अति प्रसिद्ध कहानी है। मूज़ैल एक यहूदी लड़की है और त्रिलोचन एक सिख नौजवान जो मूज़ैल के प्रेम-पाश

में बँध गया है। मूज़ैल त्रिलोचन को पसंद करती है, बल्कि उसे चाहने लगती है। लेकिन उसके साथ स्थायी वैवाहिक सम्बंध स्थापित करने में संकोच करती है क्योंकि पहले तो वह स्वयं एक गृहिणी की विशेषताएँ नहीं रखती, दूसरे अपनी स्वच्छंद जीवन-शैली के रहते हुए वह अन्य व्यक्तियों से सम्बंध बना लेती है। यह जीवन-शैली उसे प्रिय लगती है। इसलिए वह असंतुष्ट नहीं। उसे डर है कि यदि त्रिलोचन के साथ अधिक निकटता बढ़ाई तो ये सम्बंध उसके पैरों की बेड़ी बन जायेंगे। इसलिए वह एक सीमा तक ही त्रिलोचन को शारीरिक स्वतंत्रता देती है। चरित्रों के मनोवैज्ञानिक अंतर और उनकी रागात्मक भावनाओं को मंटो की दृष्टि बहुत गहरे में पकड़ती है। दरअस्ल उसके पात्रों से जो असाधारण कार्य सम्पन्न होते हैं, उन्हें उस समय तक नहीं समझा जा सकता जब तक पात्रों के जटिल मानसिक रचाव का पूरा ज्ञान न हो। उसके यहाँ जिज्ञासा और विस्मय का भाव इतना होता है कि सतह पर देखने वाली दृष्टि अपने प्रवाह में यथार्थ के इन सूक्ष्म पक्षों की प्रतीति नहीं कर पाती।

प्रथम दृष्टि में स्वयं त्रिलोचन को मूज़ैल भयानक रूप से एक पागल-सी लगती थी। कटे हुए भूरे बाल उसके सिर पर बिखरे हुए थे। होंटों पर लिपिस्टक ऐसे जमी थी जैसे गाढ़ा खून और वह भी जगह-जगह चटकी हुई थी। ढीला-ढाला सफ़ेद चुग़ा और पैरों में खड़ाऊं, जो फिसल जायें तो मूज़ैल त्रिलोचन पर आ गिरे।

मूज़ैल यदि स्वच्छंद, दुस्साहसी और बावली लड़की न होती तो त्रिलोचन की प्रेमिका किरपाल कौर को बचाने के लिए दंगों और कर्फ्यू के दिनों में त्रिलोचन को साथ लेकर मुसलमानों के मुहल्ले में न जाती। वह वहाँ जाती है और फिर सीढ़ी से फिसलती है। वह गिरती है और सिर की चोट से मर जाती है। दंगाई वस्त्रों के अंदर मूज़ैल की नग्न देह देखने में डूबे हुए हैं और मूजैल के इशारे पर त्रिलोचन किरपाल कौर को बचा ले जाता है। इस कहानी में पगड़ी-दाढ़ी अर्थात् धर्म के बाह्य चिह्न और शरीर की नग्नता का साभिप्राय विरोधाभास प्रस्तुत किया गया है। यही ब्राह्य चिह्न लोगों की मृत्यु का कारण बनते हैं, जबकि मूज़ैल के शरीर की नग्नता त्रिलोचन की जान बचाती है। जब वह अपनी पगड़ी खोलकर मूज़ैल के नग्न शरीर को ढांपता है तो वह कहती है, "ले जाओ इसको अपने इस मज़हब को।"

व्यक्ति की मनोदशाओं के चित्रण की दृष्टि से 'ख़ालिद मियां' मंटो की अच्छी कहानी है। कहानी में मुमताज को यह संदेह हो जाता है कि उसका बेटा, जिसकी पहली वर्षगांठ की वह धूमधाम से तैयारियाँ कर रहा है, एक वर्ष का होने से पहले ही मर जायेगा। और ख़ालिद सचमुच में बीमार पड़ता है और बीमारी गंभीर रूप

ले लेती है और बीमारी के साथ मुमताज़ का संदेह भी बढ़ता जाता है कि वह यह करेगा या वह करेगा, सिगरेट पियेगा या पानी पियेगा या बैंच पर बैठेगा तो खालिद मर जायेगा। हुक्म होता है कि दुआ के लिए सिज़दे में पड़ जाओ। फिर हुक्म होता है कि सिजदे से न उठो, वह दुआ मांगना चाहता था मगर हुक्म था कि मत मांगो। मुमताज़ की आँखों में आसू आ गये। वह ख़ालिद के लिए नहीं अपने लिए दुआ मांगने लगा, "ऐ खुदा मुझे इस अज़ीयत से निजात दे—तुझे अगर ख़ालिद को मारता है तो मार दे। ये मेरा क्या हश्र कर रहा है तू।" अंततोगत्वा ख़ालिद मर जाता है। मुमताज़ उसके रेशमी बालों पर हाथ फेर कर दिल चीर देने वाले लहजे में कहता है, "ख़ालिद मियाँ मेरे वहम ले जायेंगे अपने साथ।" और मुमताज को ऐसा महसूस हुआ कि जैसे ख़ालिद ने सिर हिलाकर हाँ की है।

मंटो की यह मार्मिक कहानी मृत्यु और दैव की अंधी शक्तियों के सामने मनुष्य की असहायता का अत्यंत प्रभावशाली चित्र प्रस्तुत करती है।

मंटो मानव-मन की दुर्बलताओं से भली-भाँति परिचित है। वह शेक्सपियर की भाँति इस रहस्य से भी परिचित है कि इस संसार में बहुत कुछ ऐसा है जो हमारे बोध से परे है। यह चिंतन पद्धति मंटो जैसे कठोर यथार्थवादी कथाकार के यहाँ रूमानियत का रंग भरती है। इतनी भी रूमानियत न होती तो वह 'कुत्ते की दुआ' जैसी अद्वितीय कहानी न लिखता मंटो एक खत में लिखता है "मैं दुआ का कायल हूँ—ठीक उसी तरह जिस तरह मैं मंदिर के आध्यात्मिक वातावरण का कायल हूँ। दुआ के लिए ख़ास लम्हे होते हैं। जो दुआ हर वक्त मांगी जाये मेरे ख़याल में वह दुआ नहीं।"

'कुत्ते की दुआ' मेरे अनुसार उर्दू की अकेली कहानी है जिसमें मनुष्य और कुत्ते की आत्मीयता का इतना मार्मिक चित्रण किया गया हो । वैसे भी जानवरों पर हमारे यहाँ कहानियाँ कहाँ मिलती हैं। कहानी इस वाक्य से आरंभ होती है, "आप यकीन नहीं करेंगे मगर ये वाक्य जो मैं आप को सुनाने वाला हूँ, बिल्कुल सही है।" यह कह कर शेख़ साहब ने बीड़ी सुलगाई। यह मंटो की लेखनी का जादू है कि जैसे-जैसे हम कहानी पढ़ते जाते हैं, हमारे दिल की धड़कन तेज़ होती जाती है और जब कहानी ख़त्म करते हैं तो हमें इस बात पर विश्वास हो जाता है कि जब शेख़ साहब बीमार हुए तो कुत्ते ने खाना-पीना छोड़ दिया। उदास और दुःखी रहने लगा और जब शेख़ साहब ने उससे कहा, "गोल्डी, मैं अच्छा हो जाऊंगा तुम दुआ करो।" तो उसने बड़ी उदास आँखों से देखा फिर सिर उठाकर छत की तरफ़ देखने लगा जैसे दुआ मांग रहा है और दुआ कुबूल हुई। शेख़ साहब अच्छे हुए लेकिन कुत्ता बीमार होने लगा और खुद शेख़ साहब ने ज़हर की गोली

देकर उसकी तकलीफ का ख़ात्मा कर दिया। यह कहानी कुछ इस ढंग से सुनायी गयी है, घटना-क्रम को कुछ ऐसी व्यवस्था दी गयी है और ऐसे मार्मिक प्रसंगों का वर्णन किया गया है कि पूरी कहानी एक बर्छी की तरह पाठक के सीने में उतर जाती है। 'कुत्ते की दुआ' निस्संदेह मंटो की बेहतरीन कहानियों में से है।

'बलवंत सिंह मजीठा' और 'पीरीन' दोनों दुर्बल आस्था की कहानियाँ हैं। पहली कहानी कमज़ोर है लेकिन 'पीरीन' बहुत सधे हुए ढंग से लिखी गयी है। ब्रजमोहन का यह विचार हमेशा सच साबित होता है कि यदि वह अपनी पारसी प्रेमिका पीरीन से मिलता है तो उसकी नौकरी चली जाती है। लेकिन एक बार ऐसा होता है कि पीरीन से मिलने पर नौकरी जाती नहीं बल्कि तरक़्क़ी हो जाती है। बस इसी क्षण से पीरीन का दुर्भाग्य समाप्त होने के साथ ही ब्रजमोहन के मन में पीरीन के प्रति रुचि समाप्त हो जाती है और एक रोचक बहाना भी जाता रहा। अब उसे बेकार रखने का हेतु कौन होगा ?

'शादी' एक रोचक कहानी है। इसमें शराब में डूबे एक नौजवान की मनोदशा का मनोग्राही चित्रण किया गया है। यह नशे में डूबता, उभरता, चीज़ों को भूलता, याद करता मन जब दूसरे दिन उस लड़की की तलाश में जाता है जिसके साथ उसने आधे जागते और आधे सोते रातें गुजारी थी, तो भूले-बिसरे रास्तों से अंततः अपने गंतव्य तक पहुँच ही जाता है। लेकिन वह लड़की उससे कहती है कि उसकी शादी हो गयी है। फिर उसे अपने पतिदेव से मिलाने ले जाती है। कुछ यही क़िस्सा 'मिस माला' में भी है जो खुद कभी धन्धे में रह चुकी थी और अब म्यूज़िक डायरेक्टर भटसावे को उसके मित्र के लिए अच्छी लड़की ढूंढने में मदद करती है। लेकिन जब खुद भटसावे मिस माला से चुहलें करने लगता है तो वह कहती हैं, "तुम हमारा भाई है, हमने किसी से शादी कर ली है।" दरअसल घर में रहकर व्यभिचार कराने वाली स्त्रियों का वर्ग खुले चौक बैठने वालियों से कम नहीं है और यह यूनीवर्सल फ़िनॉमिनन है। पश्चिम में तो बहुत-सी लड़कियाँ इसीलिए पेशा कराती हैं कि कुछ धनार्जन हो जाये जो संभ्रांत लोगों की तरह गृहस्थ जीवन बिताया जाये। मंटो को हैरत इस बात में है कि शादी में वह कौन-सा जादू है जो उन्हें रात की रात पतिव्रता बना देता है। उसकी रुचि इस मनोवैज्ञानिक वृत्ति में भी है कि आया स्त्री अपना रोल इतनी जल्दी बदल सकती है। शायद बदल सकती है; क्योंकि वेश्यावृत्ति पेशा होती है, आदत नहीं।

'फुंदने' जो बुखार में पड़ी एक नवयुवती की कहानी है, अपने ढंग का विशिष्ट अनुभव है और अच्छी कथा-शैली का नमूना है। एक दूसरे में घुलते-मिलते गड्डमड्ड होते और हास्यास्पद रूप धारण करते चित्रों का बुद्धि को आश्चर्य में डाल देने वाला ऐसा चमत्कार इस कहानी से पहले कहीं देखने में नहीं आया।

बाद में सिर्फ़ सुरेंद्र प्रकाश ने इस तकनीक का सफल प्रयोग किया और कुछ मूल्यवान कहानियाँ उर्दू को दीं।

ज्वरग्रस्त व्यक्ति की विकल मनोदशा में सभी चित्र उलटे-सीधे हो जाते हैं लेकिन उनकी मूल वास्तविकता का पता लगाना मुश्किल नहीं, यदि इस कहानी में स्वप्नचित्र न होते और कहानी को मात्र वास्तविकता के आधार पर गढ़ा जाता है। सिर्फ़ कुछ साधारण कुछ असाधारण और एक दो सनसनी खेज़ घटनाओं के अलावा कुछ हाथ न आता एक धनाढ्य पतनशील परिवार के शारीरिक भोगवाद की भटकन ही कहानी में व्यक्त हो पाती। यही घटनाएं जब ज्वरग्रस्त लड़की की मनोदशा से गुज़रती हैं तो हमारे मन पर दमित वासना का प्रभाव छोड़ती हैं। यह आसमान को दो टाँगों के बीच से देखने का अंदाज़ है, जिससे चीज़ें जो कुछ हैं, उससे भिन्न नज़र आती हैं।

उस बड़ी कोठी की मुर्ग़ियाँ बाग़ की झाड़ियों मे अंडे देती हैं। वहाँ बिल्ली ने बच्चे दिये थे जिन्हें बिल्ला खा गया था। कुतिया ने भी बच्चे दिये थे जिन्हें कुतिया समेत ज़हर दे दिया गया। एक नौकरानी थी जिसकी बाग़ में किसी ने हत्या कर दी। उसके गले में उसका फुंदनों वाला इजारबंद पाया गया। किसी की शादी हुई तो सुर्ख वर्दियों वाले सिपाही बड़े-बड़े फुंदने लटकाये आये। उसकी माँ हर रोज़ सुबह-शाम मोटर में सैर को जाती थी। बिगड़ी हुई मुर्गियों की तरह दूर दराज़ बागों में झाड़ियों के पीछे अंडे देती थी। डैडी होटल में था जहाँ उसकी लेडी स्टैनो-ग्राफ़र उसके माथे पर यूडीक्लोन मल रही थी। उसकी मम्मी दूसरे कमरे में थी। ड्रायवर उसके बदन से मोबिल ऑयल पोंछ रहा था। दुल्हन को जाने क्या सूझी कमबख्त ने साड़ियों के पीछे नहीं, अपने बिस्तर पर सिर्फ एक बच्चा दिया जो बड़ा गुल-गूथना लाल फुंदना था। उस सहेली का बैंड बज गया। मगर वे वर्दी वाले सिपाही फुंदने नचाते न आये। उनकी बजाय पीतल के बर्तन थे। छोटे और बड़े, जिनसे आवाज़ें निकलती थीं।

इस वर्णन शैली से अनुमान हो गया होगा कि इस कहानी का पूरा आर्ट एक ज्वराक्रांत व्यक्ति की मनोदशा को चित्रित करने का है। मंटो के इस प्रयोग से आधुनिक कहानी को सृजन की नयी दिशा मिली। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि 'ममी' की भांति 'फुंदने' कहानी भी जरूरत से ज़्यादा लम्बी खिंच गयी है।

मंटो की कहानियों का एक महत्त्वपूर्ण विषय हृदय की उदारता है। जरूरी नहीं कि यह उदार हृदय नैतिक और सामाजिक दृष्टि से उच्च कोटि के व्यक्तियों में ही मिले। बाबू गोपी नाथ तो नैतिक और सामाजिक दोनों दृष्टि से गिरा हुआ आदमी है, लेकिन उदार हृदय का धनी भी है। 'नुस्फ़ा' (वीर्य) जो एक बड़ी और रोचक कहानी है, इसका सादिक़ भी बाबू गोपीनाथ जैसा ही आदमी है। यद्यपि

दोनों में बहुत अंतर है। कहानी का आंरभ है ही दोनों की तुलना से होता है एक वेश्या की कोख में जब सादिक का वीर्य ठहर जाता है तो वह ऐसे विवाह के विरुद्ध होते हुए भी वेश्या से विवाह कर लेता है। छः महीने बाद न जाने सादिक के दिल में क्या आया कि उसने वेश्या को तलाक़ दे दी और उससे कहा, "तुम्हारा असल मुकाम यह घर नहीं—हीरामंडी है। जाओ इस लड़की को भी अपने साथ ले जाओ .... इसे शरीफ़ बनाकर मैं तुम लोगों के कारोबार के साथ जुल्म नहीं करना चाहता। जाओ खुदा मेरे इस नुत्फे का भाग्य अच्छा करे। लेकिन देखो इसे नसीहत देती रहना कि किसी से शादी की ग़लती कभी न करे। यह ग़लत चीज़ है।" इससे यह संकेत उभरता है कि सादिक स्वयं एक कारोबारी आदमी है और वह दूसरों के कारोबार उजाड़कर अपनी खुशी नहीं खरीदना चाहता। आप देखेंगे कि बाबू गोपीनाथ और इस कहानी की नैतिकताएं अलग-अलग हैं। और अपनी जगह दोनों ठीक हैं। एक बात यह भी है कि मंटो वीर्य को अहं की समस्या मानता है। इस थीम पर 'हामिद का बच्चा' एक अच्छी कहानी है। हामिद को विश्वास है कि जिस लड़की के यहाँ वह महीनों से जा रहा है उसको गर्भ ठहर गया है। हामिद के स्वाभिमान को यह स्वीकार नहीं था कि उसका बच्चा एक पेशा करने वाली के यहाँ पले। कहानी में हामिद की मानसिक विकलता देखने योग्य है। जब कोशिश के बावजूद गर्भपात् नहीं होता है तो हामिद जन्म के बाद बच्चे को गुंडों की मदद से उठा ले जाता है। कहानी यहाँ बहुत सनसनीखेज बन गयी है। लेकिन आप देखेंगे कि यह सनसनी कहानी के लिए जरूरी है क्योंकि कहानीकार बताना चाहता है कि इस बच्चे से मुक्ति पाने के लिए हामिद किसी भी सीमा तक जा सकता है। हामिद एक सुनसान जगह पर पत्थर से बच्चे का सिर कुचलने वाला ही था कि उसे खयाल आता है कि बच्चे का मुंह देख लिया जाये। दियासलाई की तीली जलाकर वह मुंह देखता है। यह किसकी शक्ल है ? उसने कहीं देखी है। कहाँ, कब ? उसे याद आता है, यह तो उसी आदमी की शक्ल है जिसके साथ लता शिवाजी पार्क में रहती थी। हामिद बच्चे को वहीं छोड़कर कहकहे लगा कर चला आता है।

पल भर में समूचा वातावरण बदल जाता है। जिस बच्चे को अपना समझकर वह मारने के लिए तैयार हो गया था, वह किसी और का निकला तो छोड़कर चला गया। तो मानो कि बच्चा महत्त्वपूर्ण नहीं था, बल्कि बच्चे के विषय में उसका व्यक्तिवादी सोच महत्त्वपूर्ण था। कितनी विचित्र बात है कि यदि बच्चा उसका होता तो मार देता, किसी और का था तो नहीं मारा। हामिद अपने वीर्य के अंश को लेकर पागल हो गया था। उस पागलपन का वास्तविक भावना से कोई सम्बंध

नहीं था। इसके विपरीत सादिक अपेक्षाकृत अधिक यथार्थवादी है। क्षण-काल के लिए वह अपने वीर्य के अंश को 'ईगो' की समस्या बनाता है, लेकिन फिर यथार्थ से आँखें चार कर लेता है और वास्तविकता यह है कि जो लोग अपने वीर्य को बिखेरते फिरते हैं, वे जानकर भी अनजान बनने की क्षमता रखते हैं। मंटो का यथार्थवादी मन यह जान चुका था कि वीर्य का अंश ईगो की समस्या है जबकि बच्चे के प्रति लगाव एक प्राकृतिक और जैविक फिनॉमिना है।

'बासित' उदारहृदयता से कहीं अधिक एक साक्षात् भोलेपन और पवित्र आत्मा की कहानी है। बासित नौजवान लड़का है जिसकी अभी-अभी शादी हुई है। उसकी दुल्हन पेट में किसी का पाप लेकर आयी है। अंततः उसका गर्भपात् हो जाता है। बासित अपने हाथों से हमाम साफ़ करता है। गुनाह की निशानी ठिकाने लगाता है। इस सदमे से उसकी माँ मर जाती है। वह इस दुःख को भी सह जाता है। वह अपनी पत्नी सईदा के गुनाह को माफ़ ही नहीं करता बल्कि उस पर पर्दा डालता है और उसे अनदेखा करता है। दर अस्ल बासित ने सईदा में मानवीय पीड़ा को अपने चरम रूप में देखा है। अपना राज़ छुपाने के लिए सईदा जिन यातनाओं को सहती है, उनकी अनुभूति से बासित के मन में एक सहानुभूति का भाव उत्पन्न हो जाता है। उसके मन में यह विचार तक नहीं आता कि सईदा एक बड़े गुनाह का शिकार हुई है। वह सईदा को ख़बर भी नहीं होने देता कि वह उसके राज़ को जान चुका है। अपने राज़ को छुपाने के लिए सईदा ने जो पीड़ा सही है, इसका विचार ही उसके मन के मैल को धो देता है। इस कहानी में मंदो का कौशल यह है कि जो आचरण पद्धति एक महात्मा, एक वली, एक पैग़म्बर को शोभा देती है, उसे एक ऐसे नौजवान के चरित्र में दिखाता है जो न आदर्शवादी है, न विचार संपन्न। उससे जो कुछ सदाचार बन पड़ता है, वह उसके व्यक्तित्व का एक सहज और अनायास आचरण है। मानो कि अंतस् की पवित्रता और निश्छलता मात्र प्रयत्न से अर्जित नहीं होती बल्कि जन्मजात और प्राकृतिक भी होती है। बासित उन लोगों में से है जो वली या फ़रिश्ता बने बिना भी इन उदात्त गुणों से संपन्न है उसे देखकर ऐसा लगता है कि कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जिनका आचरण गंगोत्री के शीतल जल की तरह स्वच्छ और पवित्र होता है। मानवीय स्वभाव की निश्छलता पर ऐसी सशक्त कहानी शायद ही कहीं अन्यत्र देखने को मिले।

'बासित' के विपरीत 'खुरश्त' ऐसी कहानी है जो अन्तरात्मा की तुच्छता को प्रस्तुत करती है। यहाँ अत्याचार की शक्ति नहीं मात्र मन का मैलापन है। खुरश्त एक पारसी डॉक्टर की पत्नी है। उनके घर में एक धनवान नौजवान सिख का

आना-जाना है। बल्कि उसके सम्बंध इतने गहरे हैं कि वह इस परिवार का एक सदस्य ही मालूम होता है। डॉक्टर को उसकी मित्रता पर पूरा विश्वास और गर्व है। वास्तव में यह कहानी मित्रता के विश्वास की पराजय पर प्रकाश डालती हे। जब वह सिख बम्बई में मंटो और उसकी पत्नी को अपने होटल में मिलने के लिए बुलाता है और वहाँ खुरश्त को अपनी पत्नी के रूप में प्रस्तुत करता है तो मंटो की पत्नी घृणा से मुंह फेर लेती है और कहती है, "चलो .... यह न ऐश है न मुहब्बत न रोमांस। यह साफ-सुथरा ज़िना (बलात्कार) भी नहीं है। कुछ बहुत गंदी बात हो गयी है। एक बहुत ही शरीफ़ और नेक आदमी की मुहब्बत और दोस्ती और ऐतिमाद के गौहर-ए-आबदार को गंदे जज़्बात के जोहर में लिथड़ा गया है।" इसीलिए मंटो ने अपनी पत्नी की प्रतिक्रिया दिखाई है जो कि स्वाभाविक प्रतीत होती है।

'बादशाहत का ख़ात्मा', 'खाली बोतलें ख़ाली डिब्बे', 'लायसेंस', 'मजीद का माजी', 'नंगी आवाज़ें', 'हरनाम कौर', 'साहब-ए-करामात', 'नक्की', 'गोली', 'बिस्मिल्लाह', 'चोर' और 'खुदा की कसम' जैसी सफल और सार्थक कहानियों की चर्चा के बिना यह मूल्यांकन अधूरा रहेगा।

'बादशाहत का ख़ात्मा' कहानी का सौंदर्य इसकी सहजता में निहित है। मनमोहन जो प्रेम से वंचित एक बेकार नवयुवक है, कुछ दिनों के लिए अपने मित्र का खाली ऑफिस संभालता है। वहीं रहता है, वहीं सोता है। एक लड़की टेलीफ़ोन पर रोज़ाना सुबह-शाम उससे बातचीत करती है। यह बातचीत कहानी की जान है जो रांग नम्बर से शुरू होकर प्रेम में बदल जाती है। इस बातचीत की विशेषता यह है कि कहानीकार ने इसमें प्रेम और रोमांस से बचाव किया है और एक यथार्थवादी व्यवहार दर्शाया है फिर भी यह बातचीत प्रेम और रोमांस को ही जन्म देती है। यह कहानी मंटो ने कुछ इस ढंग से लिखी है कि टेलीफ़ोन न आने पर और टेलीफ़ोन की घंटी बजने पर मनमोहन के साथ-साथ पाठक का दिल भी धड़क उठता है। यह लड़की जिसने टेलीफोन के ज़रिए मनमोहन के जीवन में प्रवेश किया है, उसके जीवन का उतना ही बड़ा अनुभव है जितना कि किसी को बादशाहत मिलने का अनुभव हो सकता है। लेकिन यह बादशाहत खत्म हो जाती है। मनमोहन बीमार पड़ता है और जबकि लड़की उसे पहली बार अपना फ़ोन नम्बर बताती है, वह औंधे मुंह टेलीफोन पर गिरता है और उसके मुंह से खून के बुलबुले फूटने लगते हैं। यदि कहानी का यह अंत न होता तो मनमोहन लड़की से मिलता, रोमांस आगे बढ़ता या ख़त्म हो जाता। मनमोहन की कहानी भी जीवन की हर कहानी की भाँति एकरंग और बैरंग बन जाती है। इसमें कॉमेडी

और ट्रेजडी की वह मिली जुली आभा कहाँ पैदा हो पाती जो कि बादशाहत के मिलने और ख़त्म हो जाने से पैदा हो सकी है। निस्संदेह मंटो ने कला के लिए मनमोहन का मारा। लेकिन मनमोहन का लहू व्यर्थ नहीं गया, मंटो की कहानी को रंगीन बना गया।

'ख़ाली बोतलें ख़ाली डिब्बे' कहानी एक निबंध रचना का आस्वाद कराती है। एकांतप्रिय लोगों की विभिन्न चीज़ों को जमा करने की आदतों का ज़िक्र मंटो ने बड़ी ही रोचक शैली में किया है। कहानी का एक मनोवैज्ञानिक पक्ष ध्यान देने योग्य है कि पत्नी के चुनाव में पुरुषों का जो भावुकता पूर्ण व्यवहार रहता है, वह अन्य चीज़ों की पसंद और उनकी आदतों में भी झलकता है। ख़ाली बोतलें और ख़ाली डिब्बे जमा करने वाला रामसरूप एक ऐसी दुबली-पतली स्त्री से विवाह कर लेता है जो बनारसी साड़ी में कागज़ में लिपटी हुई ख़ाली बोतल की भाँति लगती है। ज़रा सोचिए दुनिया में अगर हमारी ही पसंद काम करती तो न जाने कितनी स्त्रियां बिन ब्याही रह जातीं। लेकिन प्रकृति बॉयलॉजीकल जोड़े बनाने में बड़ी उदार सिद्ध हुई है। इस दृष्टि से हर व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक वृत्तियाँ एक दूसरे से भिन्न हैं। ख़ाली बोतलों को सजाने वाले लोग भी दुनिया में मिल जाते हैं।

'लायसेंस' कहानी स्त्री को देह व्यापार के लिए विवश करने वाली और लाससेंस देने वाली व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य है। यह व्यवस्था देह व्यापार का लायसेंस तो देती है लेकिन तांगा चलाने का नहीं। कहानी सुलिखित है लेकिन व्यंग्य ने मनोवैज्ञानिक यथार्थ चित्रण को क्षति पहुँचायी है। वास्तव में एक कुलीन स्त्री के लिए धंधा करने का निर्णय बड़ा मार्मिक होता है। बस कहानी में इसी मार्मिकता का प्रतिबिम्ब नहीं है। इसमें केवल बाह्य संघर्ष का चित्रण हो सका है। लोग बेईमानियाँ करते हैं लेकिन जब एक स्त्री खुद ताँगा चलाती है तो लोग विरोध करने लगते हैं। विवश होकर वह धंधे का लायसेंस माँगती है। अंतर्मन की सूक्ष्मताओं की बजाय विवशताओं के वर्णन से व्यंग्य की षृष्टि तो हो सकती है लेकिन यह व्यंग्य यथार्थ चित्रण के अभाव का एहसास कराता है।

'मजीद का माज़ी' एक साधारण-सी कहानी है। कहानी पढ़कर लगता है कि इसमें क्या है ? कोई भी ऐसी कहानी लिख सकता है, लेकिन लिखता सिर्फ़ मंटो ही है। मजीद ने खूब धन कमाया है और सुखसुविधाओं का जीवन बिताया है। अब वह उन दिनों को याद करता है जब वह दरिद्र था किंतु प्रसन्न था। आम तौर पर ऐसी कहानियाँ पात्रों की भाव-स्थितियों को व्यक्त करती हैं लेकिन उन्हें

पाठकों पर संप्रेषित नहीं कर सकतीं। यह कहानी भावों के संप्रेषण में सफल हुई है और यही इसका गुण है।

'नंगी आवाज़ें' सघन आबादियों में बसने वाले लोगों के जीवन की अंतर्बाह्य विसंगतियों की ओर ध्यान आकृष्ट करती है। वास्तव में हम अमानवीय स्थितियों में जीने के लिए इतने विवश हैं कि हम यह भी नहीं देख पाते कि इस ढंग की जीवनपद्धति हमारे भाव-संसार के लिए कितनी हानिप्रद है और एक सभ्य समाज में असभ्यता के धरातल पर जीने के क्या परिणाम होते हैं। इस कहानी में आर्थिक रूप से बहुत ही पिछड़े हुए वर्ग को प्रस्तुत किया गया है जिसके पास सुख के नाम पर केवल मूलभूत प्राकृतिक अपेक्षाएं हैं और ये प्राकृतिक अपेक्षाएं बहुत प्रबल होती हैं। प्रकृति इन लोगों को मज़बूत काठी, खुली भूख और जी तोड़ परिश्रम की शक्ति देती है। भोलू कलई का काम करता है। उसने विवाह न करने की प्रतिज्ञा कर ली थी। लेकिन गर्मियों में जब सब लोग ऊपर छत पर अपनी-अपनी खाटों के आसपास टाट के पर्दे बाँधकर रहने लगे तो भोलू का मन बदल गया। उसने अपने भाई भाभी से कहा, मेरी शादी कर दो वरना मैं पागल हो जाऊंगा। भोलू की शादी ही जाती है। लेकिन यह डर कि लोग उसकी खाट की तरफ़ आँखें और कान लगाये बैठे हैं, उसके वैवाहिक जीवन को नष्ट कर देता है और वह पागल हो जाता है। प्राकृतिक शक्ति का दबाव जितना तीव्र होता है उतनी ही तीव्र उसकी प्रतिक्रिया होती है। देह को जो एकांत चाहिए यदि वह उसे न मिले तो अनेक जटिलताएं और विसंगतियाँ पैदा हो जाती हैं। देखा जाये तो अनेक दृष्टियों से आधुनिक सभ्यता एकांत की शत्रु रही है।

'हरनाम कौर' में अप्रत्याशित और विस्मयकारी परिणति की तकनीक का प्रयोग किया गया है। इस तकनीक के माध्यम से कहानीकार उन लोगों को जो यह समझते हैं कि परिस्थितियों की वल्गा उनके हाथ में है, यह एहसास कराने में सफल होता है कि "मा दर चे ख़यालीम-ओ-फ़लक दर चे ख़याल"[1] और आकाश इस कहानी में इतना दूर भी नहीं। हरनाम कौर जो एक बहुत ही सुंदर और साहसी स्त्री थी, उसके मानसिक साहचर्य में है। वह एक लड़का छोड़कर मर गयी है और लड़का बहादुर सिंह जैसे-जैसे बड़ा होता गया, अपनी माँ की याद दिलाने लगा। .... निहाल सिंह को लाम से आने के बाद उसकी शादी की चिंता हुई। सब जवान अपने-अपने लिए लड़कियाँ उठा लाये। बहादुर से तो कुछ बन न पड़ा अलबत्ता खुद निहालसिंह बेटे के लिए एक लड़की उठा लाया और बहादुर के साथ उसे कमरे में बंद कर दिया। सुबह निहाल सिंह जब कमरे में गया तो एक

लड़की बिजली की-सी तेज़ी के साथ बाहर दौड़ गयी। उसके दाढ़ी थी। मुंडी हुई दाढ़ी। निहाल सिंह चारपाई की तरह बढ़ा। लड़की जो उस पर बैठी थी और ज़्यादा सिमट गयी। निहाल सिंह ने उसका मुँह अपनी तरफ़ किया तो एक चीख़ उसके कंठ से निकली 'हरनाम कौर।', ज़नाना लिबास, सीधी मांग, काली चोटी ... और बहादुर होंठ भी चूस रहा था, बिल्कुल हरनाम कौर की तरह। तो जिस लड़के के पौरुष की निहाल सिंह को इतनी चिंता थी वह तो लड़की बन चुका था। और जिस लड़की को रात के अंधेरे में उठाकर लाया वह तो लड़का था। इस कहानी की कलात्मक विशेषता हरनाम कौर के चरित्र और बहादुर के रूपांतरण की प्रक्रिया का वर्णन करने में निहित है।

'साहब-ए-करामात' एक सुंदर ढंग से लिखी गयी कहानी है। इसमें एक युवक दाढ़ी लगाकर एक चमत्कारी मौलवी का रूप धारण कर लेता है, एक सीधे-सादे किसान को मूर्ख बनाता है और उसकी पत्नी व बेटी दोनों को शराब पिला कर जन्नत की सैर का झांसा देता है। कहानी में बड़ी नाटकीयता है। वास्तव में दुर्बल आस्था के मंच पर धार्मिक पाखंड के नाटक को मंटो ने इतने रोचक रूप में प्रस्तुत किया है कि यह कहानी अत्यंत मनोहारी रचना बन गयी है। लेकिन जो चीज़ इस कहानी में हास्य के साथ-साथ गहराई उत्पन्न करती है, वह दुर्बल आस्था का मनोविज्ञान है, जिसकी तमाम बारिकियों का मंटो को ज्ञान है।

'नक्की' एक निर्धन स्त्री के निरर्थक जीवन की विचित्र कहानी है। उसका पति पहले दर्जे का निखट्टू शराबी-कबाबी और ज़ालिम था और नक्की में सिर्फ़ उसकी इतनी रूचि थी कि वह उसे मारपीट सकता था। तलाक़ के बाद नक्की अपनी लड़की को लेकर एक मुहल्ले में जाती है और वहाँ उसकी आये दिन पड़ोसियों से लड़ाइयाँ होती रहती हैं। लेकिन इन लड़ाइयों से नक्की में यह आत्मविश्वास जाग्रत हो जाता है कि वह एक बेहद लड़ाका औरत है। अतएव वह लड़ाई को अपना पेशा बना लेती है। और जिन औरतों से उसे पैसे मिलते हैं उनकी ओर से वह दूसरी औरतों से लड़ती है। बेटी जब जवान होती है तो उसे उसके विवाह की चिंता होती है। लेकिन अब सवाल यह है कि ऐसी लड़ाका औरत की लड़की से कौन विवाह करेगा ? वह भोली से कहती है, "तेरी माँ को सब कुलटा समझते हैं।" और भोली कहती है, "हाँ माँ !" और नक्की को इन दो शब्दों से बड़ा आघात पहुँचता है। चालीस वर्ष की उम्र में ही नक्की बीमार पड़कर चारपाई से लग जाती है। औरतों को मालूम होता है कि अब वह कुछ ही दिनों की मेहमान

मैं किस ख़याल में हूँ और आसमान किस ख़याल में है ? अर्थात् मनुष्य और विधाता की इच्छाएँ एक नहीं होती।

है। वे उसे देखने आती हैं और नक्की बर्राहट की स्थिति में कुछ बकती है। वह किसी से लड़ रही है "मैं तेरी पुश्त-पुश्त को अच्छी तरह जानती हूँ। जो कुछ तूने मेरे साथ किया है, वह कोई दुश्मन के साथ भी नहीं करता। ये क्या दुनिया बनायी है तूने .... मेरे सामने आ .... ज़रा मेरे सामने आ ! " और नक्की मर जाती है।

पति से लेकर ईश्वर तक के अप्रिय आचरण को मंटो ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि नक्की की असहाय स्थिति में उस दुर्बल मनुष्य की पुकार समा गयी है जो लौकिक और पारलौकिक शाक्तियों के सामने सदा विवश और उत्पीड़ित रहा है।

'गोली' दोधारी तलवार है। एक सुंदर लेकिन दोनों पैरों से अपाहिज लड़की को देखकर पति पत्नी का दिल पसीज जाता है कि बेचारी से कौन विवाह करेगा ? पत्नी की निश्छल सहानुमति देख कर पति कहता है, कि अगर तुम इजाज़त दो तो मैं शादी कर लूं। पत्नी कहती है, "मैं गोली मार दूंगी उसे, अगर आपने उससे शादी की"। "अगर स्त्री में अपने पति को ईर्ष्यालु रूप में अपने पास रखने का गुण न हो तो क्या शिकारी पुरुष शिकार से और आधुनिक पुरुष दफ्तर से घर लौटगा ? अगर पुरुष इसी प्रकार उदारता दिखाता फिरे तो क्या वह अपने परिवार की देखभाल कर सकेगा ? दया की भावना से भी चौकन्ना रहना चाहिए और यह भी जानना चाहिए कि स्त्री की सहानुभूति भी उसी समय तक बनी रहती है जब तक उसके 'स्व' को कोई ख़तरा नहीं होता। इस कहानी से अनेक मनोवैज्ञानिक और नैतिक गूढ़ संकेत उभरते हैं जो पाठक से गंभीर सोच-विचार की अपेक्षा करते हैं।

'बिस्मिल्लाह' लाहौर में एक लड़की है जिसकी बड़ी-बड़ी उदास आँखें हैं। सईद ने कई बार सोचा कि इस उदासी का कारण क्या है ? इनकी बनावट ही कुछ ऐसी है कि उदास दिखाई देती हैं या कोई अन्य कारण है ? सईद आत्म भर्त्सना भी करता कि वह बिस्मिल्ला के प्रति शारीरिक आकर्षण महसूस करता है, हालाँकि वह उसके मित्र ज़हीर की पत्नी है। लेकिन कुछ ही दिनों में यह रहस्य खुल गया कि बिस्मिल्लाह ज़हीर की पत्नी नहीं थी। वह एक हिंदू लड़की थी जो दंगों में यहाँ रह गयी थी। ज़हीर उससे पेशा कराता था। पुलिस उसे बरामद करके ले गयी है लेकिन वे बड़ी-बड़ी उदास आँखें अब भी सईद का पीछा करती हैं।

सवाल यह है कि यह किसकी कहानी है ? उस लड़की की, उदासी की या सईद के अभावों की ? सईदा के लड़की के प्रति शारीरिक आकर्षण की या उदास आँखों के पीछा करने की ? क्या उसे इस बात का अफ़सोस है कि उसने दोस्ती का ख़याल करके एक ऐसी लड़की से सम्बंध नहीं बनाये जिसके प्रति वह

आकृष्ट था और जो धंधा कराती थी। यदि उसने सम्बंध बनाया होता तो क्या वह खुश रहता ? उसकी उदास आँखें उसका पीछा न करतीं ? कहानी का सौंदर्य इसी में है कि वह बहुत से ऐसे सवाल उठाती है जिनके जवाब जिंदगी के सवालों की तरह हमें कभी नहीं मिलते।

'खुदा की क़सम' ममता के विषय पर मंटो की एक सशक्त और गंभीर कहानी है। यह कहानी देश के विभाजन के बाद के दंगों, शरणार्थियों के कैम्प और अगवा की गई लड़कियों की तलाश में शरणार्थियों की दौड़ धूप की पृष्ठभूमि पर लिखी गई हैं। इसमें एक माँ है, जो अपनी गुमशुदा लड़की को ढूँढ़ रही है। वह कहती है कि उसकी लड़की की कोई हत्या नहीं कर सकता क्योंकि वह बहुत सुंदर है। दिन गुज़रते जाते हैं। बुढ़िया सड़कों पर, बस के अड्डों पर मैले चीकट कपड़ों में बेटी को ढूँढ़ती रहती है। इससे जब कहा जाता है कि बेटी मर चुकी है तो उसे विश्वास नहीं होता था। अब वह चीथड़ों में थी। बिल्कुल पगली और लगभग नंगी। उसके पास से होकर एक दम्पति का निकलना हुआ। सुंदर सजीला नौजवान सिख और उसके साथ हल्का-सा घूंघट काढ़े गुलाबी चेहरे वाली अति रूपवान युवती। सिख नौजवान ने पगली को देखा तो ठिठक गया, "तुम्हारी माँ !" लड़की ने देखा घूँघट गिरा दिया और नौजवान का हाथ पकड़कर भिंचे हुए लहजे में कहा, "चलो।" और दोनों तेज़ी से आगे निकल गये। पगली चिल्लायी, " भाग भरी, भाग भरी।" वह बहुत व्याकुल थी। उससे कहा गया, "भाग भरी मर चुकी है।" उसने चीख़ कर कहा, "तुम झूठ कहते हो।" "मैं खुदा की क़सम खाकर कहता हूँ वह मर चुकी है।" यह सुनते ही वह पगली चौक में ढेर हो गयी।

चिथड़ों में लिपटी मैली चीकट पगली में सिवाय उसकी ममता के और कौन सी चीज़ जीवित थी ? उसका समूचा अस्तित्व ममता के भाव में सिमट आया था जबकि उसकी रूपवती बेटी उससे पृथक् अस्तित्व रखती थी जिसमें माँ के लिए अब कोई स्थान नहीं था। प्रेम न हो जो रक्त सम्बंधों का भी कोई अर्थ नहीं है और ममता के अभाव में मात्र रक्त सम्बंध प्रेम का स्रोत नहीं हो सकते। यथार्थदर्शी दृष्टि यहाँ अस्तित्व की गहराइयों की थाह पा लेती है और स्थूल दृष्टि की भाँति सम्बंधों के भ्रम में खोकर नहीं रह जाती।

इस पड़ताल से आपको अनुमान हुआ होगा कि मंटो वास्तव में बड़ा कथाकार था, जिसके हृदय में कहानीकला के संपूर्ण रहस्य छुपे हुए थे। उसकी साधारण से साधारण कहानी भी कलात्मक वैशिष्ट्य का प्रमाण प्रस्तुत करती है। मंटो कभी भी नीरस, शुष्क और निष्प्राण प्रतीत नहीं होता। सृजन की तरल अग्नि उसकी शिराओं में दौड़ती रहती है। उसकी हर कहानी जीवन के अछूते और अनौखे अनुभवों के ताप से दहकी हुई है। मंटो की निर्भीक और निष्ठुर यथार्थवादी दृष्टि

ने हमारी अनगिनत रूढ़ आस्थाओं और धारणाओं को तोड़ा है और हमें जीवन रूपी अंगारे को नंगी उंगलियों से छूने का साहस प्रदान किया है। मंटो के माध्यम से हम पहली बार उन वास्तविकताओं से परिचित हुए हैं जिनके ज्ञान के अभाव में मनुष्य कोमल और सुखद आस्थाओं के सुरक्षित परिसर में छुई-मुई व्यक्तित्वों की भाँति जीता है। मंटो यदि इतना कुशल और जादू जगाने वाला कहानीवार तथा विशिष्ट शैली का कलाकार न होता तो विश्वास कीजिए उसके आग्नेय विचारों के अँगारों से उसकी कहानियाँ झुलस गयी होतीं मंटो क्योंकि एक मंझा हुआ, सुरूचिसंपन्न और दक्ष कलाकार था, इसलिए टेढ़ी-मेढ़ी सूखी डालियों जैसे विषय भी उसके भावों की खान से बाहर निकलते तो कला के आभावान मोती बनकर जगमगा रहे होते।

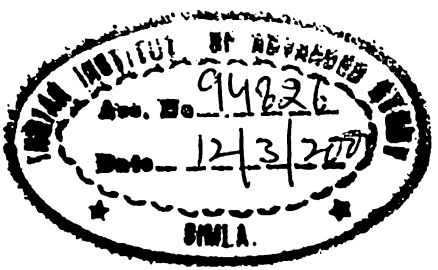

प्रेमचंद के बाद उर्दू कहानीकारों की जो पीढ़ी उभरी उनमें कृशन चंदर, राजिंदर सिंह बेदी, इस्मत चग़ताई और सआदत हसन मंटो का विशिष्ट स्थान है। मंटो को इन चारों में सबसे कम आयु मिली। लेकिन ऐसा लगता है कि अपने 43 वर्षों में वह कई जीवन जी गया। उसका जीवन हंगामों से भरा हुआ रहा और उसकी कहानियों ने बड़े तुफान जगाये। उस पर अश्लीलता, सनसनीख़ेजी और आतंकवाद के आरोप लगाये गये। कहानियों पर मुकदमें चले और अख़बारों में गालियाँ दी गयीं। उसकी हर कहानी एक साहित्यिक घटना होती थी। पहले तो यह कहानी लोगों को चौकाती, धँचका पहुँचाती लेकिन जब वे ठंडे मन से विचार करते तो उसमें कला का एक अद्वितीय अनुभव प्राप्त होता। मंटो अपने समय का निर्भीक और निर्द्वन्द्व यथार्थवादी रचनाकार था। उसने सही अर्थों में उर्दू कहानी को यथार्थ की चिलचिलाती धूप में नंगे पैर लाकर खड़ा कर दिया। उसके विचारों में नवीनता, शैली में मितव्ययिता और वर्णन में शालीनता थी। वह मानस–स्वभाव का मर्मज्ञ था। उसे मनुष्य के निरर्थक दुःख की गहरी अनुभूति थी और उसके जीवन की त्रासदी चेतना के धरातल पर उस बिंदु को छूती थी जहाँ बुद्ध की पथरीली आँखों में करुणा समाविष्ट हो गयी है। वहाँ से जहाँ कोई नैतिक अवलंब उसे नहीं मिलता, मंटो ने घबराये और चकराये बिना जीवन की भयावहता और अभाव का ऐसा चित्रण किया है कि पत्थर का दिल भी पानी हो जाये। इसके बावजूद वह मनुष्य की मनुष्यता और जीवनदायिनी क्षमताओं से निराश नहीं हुआ। अपने इन अनुभवों को उसने ऐसी प्रभावशाली और विस्मयकारी कहानियों का रुप दे दिया है Library IIAS, Shimla
H 819.32 M 319 A
00094826 समृद्धि पर समुचित गर्व क

ISBN 81-260-0134-8

Rs. 15.